धर्मध्यान

श्री नेमीचन्द पांड्याकी स्वर्गीया
धर्मपत्नीकी स्मृतिमें धर्मध्यानार्थ
वितरित पाठ-संग्रह

卐

सम्पादक
धन्यकुमार जैन

प्राप्ति-स्थान
सेठ मदनचन्द नेमीचन्द पांड्या
५१, शिवतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता

प्रकाशक:—श्री नेमीचन्द पांड्या
४१, शिवतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता
मुद्रक·—नेमीचन्द बाकलीवाल, सन्मति आर्ट प्रेस
६२, ब्रॉमतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता
प्रथम संस्करण २५०० :: वसन्त-पंचमी १९९६

प्रभावना-अंग और 'धर्मध्यान'

वास्तवमें, अगर सत्य या तत्त्व-दृष्टिसे देखा जाय, तो संसारमें जीवन और मरण एक ऐसी साधारण घटना है, जो आये-दिन और प्रतिक्षण, रात और दिनकी तरह, हुआ ही करती है। संसारके मानी ही हैं जीना और मरना। परन्तु, इस जीने और मरनेके दरमियान, जो कुछ करनेके लिए जीते हैं और कुछ करके मरते हैं, उन्हींका जीना और मरना सार्थक है।

जिनकी स्मृतिमें यह पुस्तक अपने साधर्मी भाइयोंको भेंट की जा रही है, यद्यपि उनका जीवन बहुत लम्बा नहीं है, सिर्फ बीस ही साल तक वे इस पर्यायमें रही थीं, परन्तु फिर भी, यह सच है कि इस छोटे-से जीवनमें उन्हें 'धर्मध्यान' जैसे संग्रह-ग्रन्थसे काफी लाभ हुआ। और यही कारण है कि उन्होंने मृत्यु-समयमें दस हजार रुपयेका दान देकर, संसारके भ्रम-मार्गमें भटकती हुई आत्माओंके दुःखको अपना ही दुःख समझकर, अपने समान उन्हें भी शान्तिका अभ्रान्त सीधा मार्ग सूझ जानेकी आशासे, जिन-शासनके माहात्म्य अर्थात् विराग-ज्ञानका प्रकाश करके 'प्रभावना-अंग' का मुख्य कर्तव्य पालन किया। जैसा कि आचार्यवर श्रीसमन्तभद्र स्वामीने कहा है—

> अज्ञान-तिमिर-व्याप्तिम्-अपाकृत्य यथायथम्;
> जिन-शासन-माहात्म्य-प्रकाशः स्यात्-प्रभावना।*

---

* जैसे होवे वैसे भाई, दूर हटा जगका अज्ञान;
कर प्रकाश, कर दे विनाश तम, फैला दे शुचि-सच्चा ज्ञान।
तन-मन-धन सर्वस्व भले हो, इसमें तेरा लग जावे;
वज्रकुमार मुनीन्द्र सदृश तू तब 'प्रभावना' कर पावे।

जब हम यह सोचते हैं कि वह भी कोई जमाना था जब स्वामी समन्तभद्रकी वाणीके स्पर्शसे हजारों-लाखों आत्माएँ जाग उठती थीं, और आज भी एक जमाना है जब प्रतिदिन उसी वाणीका स्वाध्याय करते हुए भी आत्मा सोती ही रहती है, तब हमें अविश्वास होने लगता है अपने विश्वासपर, सन्देह होता है अपनी श्रद्धापर कि शायद हमारा विश्वास, हमारी अविनाशी श्रद्धा, संसारकी नश्वर सम्पत्तिसे बहुत हलकी है ! इतनी हलकी कि वह सत्य-तराजूके जमीनसे लगे हुए सम्पत्तिवाले भारी पल्लेको टससे मस नहीं कर पाती ! यह मार्मिक दु खकी बात है, और, धर्म और समाजके लिए क्षयरोग है, जिसका इलाज बहुत जल्द होना चाहिए।

बहुत दिनों बाद, आज मुझे एक ऐसे धर्म-बन्धु मिले हैं, जो सम्पत्तिशाली होते हुए भी उस धर्मके सेवक हैं 'जो ससार - दुःखसे सारे जीवोको सु बचाता है'; जो नवयुवक होते हुए भी प्राचीन किन्तु अजर-अमर आत्माको नहीं भूले हैं। उन्हीं मित्रकी भेट है यह, जो उनकी स्वर्गीया धर्मपत्नीकी स्मृतिमें आपको अर्पित की जाती है।

मुझे पूरी आशा है कि आज, इस अज्ञानान्धकार-मय कालमें, जब कि हिंसा-पूर्ण आधुनिक 'सभ्यता'-सर्पिणी अपना फण उद्यत किये हुए है, हमें अपनी रक्षाके लिए, सत्य और अहिंसाकी रक्षाके लिए, सत्य-प्रकाशिका आत्म-कल्याण-कारिणी जिनवाणीका अधिकाधिक प्रचार करनेके लिए की गई, श्रीयुत नेमिचन्द पांड्याकी इस प्रभावना-अंगकी महत्त्वपूर्ण कृतिका सम्पत्तिशाली धर्म-प्रेमी सज्जन अनुकरण करेंगे।

—धन्यकुमार जैन

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

णमो अरहंताणं

धर्मध्यान

णमोकार महामन्त्र

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आइरीयाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं।

अरहंतोंको नमस्कार, सिद्धोंको नमस्कार, आचार्योंको नमस्कार, उपाध्यायोंको नमस्कार, लोकके समस्त साधुओंको नमस्कार।

चत्तारि मंगलं :—अरहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा :—अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि :—अरहंत-सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध-सरणं पव्वज्जामि, साहू-सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

चार मगल है —अरहत मगल है, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल है, केवली-(सर्वज्ञ)-प्रणीत धर्म मंगल है। चार लोकोत्तम है :—अरहंत लोकोत्तम है, सिद्ध लोकोत्तम है, साधु लोकोत्तम है, केवली-(सर्वज्ञ)-प्रणीत धर्म लोकोत्तम है। चारकी शरण लेता हूँ —अरहतकी शरण लेता हूँ, सिद्धकी शरण लेता हूँ, साधुकी शरण लेता हूँ, केवली-(सर्वज्ञ)-प्रणीत धर्मकी शरण लेता हूँ।

देव स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि,
निजानन्द - रस - लीन;
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित,
अरि - रज - रहस - विहीन ।१

जय वीतराग, विज्ञान - पूर,
जय मोह-तिमिरको हरन सूर;
जय ज्ञान अनन्तानन्त धार,
दृग-सुख-वीरज-मंडित अपार ।२
जय परमशान्त मुद्रा-समेत,
भविजनको निज अनुभूति-हेत;
भवि-भागन वच-जोगे-वशाय,
तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।३

तुम गुण चिंतत निज-पर-विवेक
प्रगटै, विघटैं आपद अनेक ;
तुम जग-भूषण दूषण-वियुक्त,
सब महिमा-युक्त विकल्प-मुक्त ।४
अविरुद्ध शुद्ध चेतन-सरूप,
परमात्म परम-पावन अनूप ;
शुभ-अशुभ-विभाव अभाव कीन,
स्वाभाविक परिणतिमय अछीन ।५
अष्टादश-दोष-विमुक्त धीर,
सुचतुष्टय-मय राजत गभीर ;
मुनि-गणधरादि सेवत महन्त,
नव केवल-लब्धि-रमा धरन्त ।६
तुम शासन सेय अमेय जीव,
शिव गये, जाहिं, जैहैं सदीव ;
भव-सागरमें दुख-छार-वारि,
तारनको और न, आप टारि ।७
यह लखि निज-दुख-गद हरन-काज,
तुम ही निमित्त-कारण इलाज
जाने, तातैं मैं शरण आय,
उचरों निज दुख जो चिर लहाय ।८

मैं भ्रमो अपनपो विसरि आप,
अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप;
निजकों परकौ करता पिछान,
परमें अनिष्टता इष्ट ठान।९

आकुलित भयो अज्ञान धारि,
ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि;
तन-परिणतिमें आपो चितार,
कबहूँ न अनुभवो स्वपद-सार।१०

तुमको बिन जाने जो कलेश
पाये, सो तुम जानत जिनेश!
पशु-नारक-नर-सुरगति मँझार,
भव धर-धर मर्‌यो अनंत बार।११

अब काललब्धि-बलतैं दयाल,
तुम दरसन पाय भयो खुशाल;
मन शांत भयो, मिटि सकल द्वन्द,
चाख्यो स्वातम-रस दुख-निकंद।१२

तातैं अब ऐसी करहु नाथ,
बिछुरैं न कभी तुअ चरण साथ;
तुम गुणगणको नहिं छेव, देव,
जग तारनको तुअ विरद एव।१३

आतमके अहित विषय-कषाय ,
इनमें मेरी परिणति न जाय ;
मैं रहूँ आपमें आप लीन ,
सो करो, होहुँ ज्यों निज-अधीन ।१४
मेरे न चाह कछु और ईश ,
रतनत्रय-निधि दीजे मुनीश ;
मुझ कारजके कारन सु आप ,
शिव करहु, हरहु मम मोह-ताप ।१५
शशि शांति-करन, तप-हरन हेत
स्वयमेव, तथा तुम कुशल देन ;
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय,
त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ।१६
त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय,
नहिं तुम बिन निज-सुखदाय होय ;
मो उर यह निश्चय भयो आज,
दुख-जलधि उतारन तुम जहाज ।१७
तुम गुणगण-मणि, गणपती
गणत न पावहिं पार ;
'दौल' स्वल्प-मति किमि कहै ,
नमूँ त्रि-योग सँभार ।१८

वे जिनेन्द्रदेव, जो ससारके सम्पूर्ण रूपी-अरूपी ज्ञेय पदार्थोंको जानते हुए भी अपने आत्मानन्द-रसमे लीन हैं और ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तराय इन चार आत्म-घाती कर्मोंसे विमुक्त है, सदा जयवन्त हों !

हे वीतराग, विज्ञानमय, तुम्हारी जय हो । उस मोहान्धकारको, जिसमे हम सम्यक्दृष्टि (सत्य-द्रष्टा) नहीं हो पाते, दूर करनेवाले सूर्य, तुम्हारी जय हो । हे अनन्तानन्त ज्ञान दर्शन सुख और वीर्यके धारक, सर्वज्ञ, तुम्हारी जय हो । २ । हे परम शान्त वीतराग मुद्राके धारक, हम भव्यजनोंको अपनी आत्मानुभूतिके सहायक कारण, तुम्हारी जय हो । भव्यजनोंके भाग्यवश और तुम्हारे वचन-योगके कारण जो तुम्हारी दिव्य ध्वनि होती है, उसे सुनकर हमारा मिथ्यात्व-रूप विभ्रम नष्ट होता है । ३ । तुम्हारे गुणोंका चिन्तन या ध्यान करनेसे मुझे आत्मा और पर-द्रव्यका, अपने और परायेका विवेक प्रगट होता है, जिससे मैं अनेक आपदाओंसे बच जाता हूँ । तुम जगतके भूषण हो और दोषोंसे मुक्त हो, सब महिमाओंसे युक्त हो और विकल्पोंसे मुक्त हो । ४ । तुम शुद्ध आत्म-स्वरूप हो, अविरुद्ध हो, परमात्मा हो, परम पवित्र हो, अनुपम हो । तुमने शुभ-अशुभ दोनो विभावोंको दूर करके स्वाभाविक परिणति प्राप्त कर ली है, तुम अक्षय हो । ५ । तुम अठारह दोषोंसे मुक्त हो, महावीर हो, अनन्त ज्ञान-दर्शन सुख-वीर्य रूप सुचतुष्टयमय हो, गम्भीर हो । हे मुनि-गणधर आदिसे सेवित और नौ केवल-लब्धियों (विभूतियों) के धारक, तुम महान हो ।

देव-स्तुति

तुम्हारी वाणीके अनुसार चलकर, तुम्हारे शासनको मानकर, मुझ-जैसी असख्य आत्माएँ मुक्त हो गई हैं, मुक्त हो रही हैं और सदा होती रहेंगी। हे देव, इस ससार-समुद्रमें दुःख-रूप खारी पानीके सिवा और कुछ नहीं है, इस अथाह दुःख-जलधिसे मुझ डूबतेको अगर कोई निकाल सकता है, तो तुम्हीं हो, और कोई नहीं।७। यही सोचकर मैं अपने दुःख-रूप रोगका इलाज कराने तुम्हारे पास आया हूँ; तुम्हीं तो हो निमित्त-कारण; इसीसे तो तुम्हारी शरण आया हूँ। मेरे उन दुःखोंको तो सुनो, जो मैं अनादि कालसे भोग रहा हूँ।८।

मैं अपने आपको भूलकर, अपनी अनन्त शक्तिशाली आत्माको भूलकर कर्म-फलको, पुण्य-पापको, ही अपनाता रहा! मैं, अपनेसे बिलकुल भिन्न, पर-पदार्थोंमें अपना अनुभव करता रहा, अपनेको परमें देखता रहा, पर-वस्तुमें अपना इष्ट और अनिष्ट ठानता रहा।९। इस अज्ञानसे मैं आकुल-व्याकुल होकर ऐसा भटकता फिरा, जैसे प्यासा मृग मृगतृष्णासे भटक-भटककर मर जाता है, पर पानी नहीं पाता। इस शरीरकी परिणतिमें मैंने अपनी कल्पना की मैंने समझा कि यही मैं हूँ जो ऊपरसे दीखता हूँ, और यही सोचकर कभी भी मैंने सारभूत स्व-पदार्थ, अपनी आत्माका, अनुभव नहीं किया कि मैं क्या हूँ।१०। तुम तो जानते हो जिनेश, तुम्हें पहचाने बगैर जो-जो मैंने दुःख उठाये हैं! स्वर्ग और नरक, मनुष्य और पशु, इन चारों गतियोंमें अनन्त बार पैदा हुआ हूँ और मरा हूँ।११। अब काल-लब्धिसे, बड़ी-बड़ी मुश्किलोंसे परिवर्तन-चक्र पूरा करके, हे दयालु, आज तुम्हारा

दर्शन * पाया है और अब मैं खुशहाल हूँ। आज मेरा मन शान्त है, क्योंकि आज मेरे सब द्वन्द्व मिट गये है, आज मुझे सब दुःख दूर करनेवाला अपना आत्म-रस चाखनेको मिल गया है और मै अपना स्वाद ले रहा हूँ। १२। इसलिए हे नाथ, अब ऐसा करो कि आइन्दा कभी भी तुम्हारे चरणोंसे मैं बिछुड़ न जाऊँ। हे देव, तुम्हारे गुणोका कोई ओर-छोर नही, जगत्-जीवोंको तारना ही तो तुम्हारा विरद है, (फिर मैं भला कैसे न तरूँगा ?)। १३।

हे देव, मै और कुछ नही चाहता, बस इतना ही चाहता हूँ कि मेरी आत्माका अहित करनेवाले, मुझे अनन्त ससार-समुद्रमे डुबोनेवाले जो विषय-कषाय हैं, उनमे मेरी परिणति न जाय। मै अपने ही आपमे लीन रहूँ। बस इतना कर दो कि मैं अपने अधीन रह सकूँ, स्वाधीन हो जाऊँ,—कर्मोके अधीन न रहना पड़े।१४। हे ईश, मुझे और कोई चाह नही, सिर्फ सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन रत्नोंको चाहता हूँ, मुनीश ! मेरे कार्यमे तुम सहायक कारण हो। तुम मेरे कार्यके कारण बनकर मुझे मोक्ष मार्गपर चलाते रहो, मेरे मोह-तापको दूर करके मुझे अनन्त सुखी कर दो। १५। चन्द्रमा

---

* 'दर्शन' शब्दको यहाँ व्यापक अर्थमे लेना चाहिए, क्योंकि कवि आगे चलकर कहते है—'मन शान्त हुआ है, द्वन्द्वभाव मिट गये है, आत्म-रस मिल रहा है' इत्यादि। इसलिए 'दर्शन (दिखने) के निमित्त-कारणसे 'सम्यक्दर्शन' की प्राप्ति हुई है,—ऐसा व्यापक अर्थ करनेमे अधिक रस मिलता है।

जैसे शान्ति देने और आताप दूर करनेमें स्वतः कारण है, उसी तरह तुम मेरी शान्तिके स्वतः कारण हो, तुमसे अपने-आप ही मेरा मगल होगा। जैसे अमृत पीनेसे रोग जाता रहता है, उमी तरह तुम्हारी अनुभूतिसे मेरे भव नष्ट हो जायँगे—मेरे जन्म-मरणका अन्त हो जायगा। १६। हे देव, तीनों लोकमें और भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालोंमें तुम्हारे सिवा और कोई भी आत्म-सुख देनेवाला नहीं है,—मेरे मनमें इस बातका आज निश्चय हो चुका है कि तुम्हीं इस दुःख-समुद्रसे तारनेवाले एकमात्र जहाज हो।

हे देव, स्वय गणधर भी तुम्हारे गुण-मणियोंकी गिनती करके पार नहीं पा सकते, फिर मुझ (दौलत') जैसा अल्पबुद्धि कैसे उन गुणोंका पार पा सकता है? इसलिए हे देव, मैं तो सिर्फ मन-वचन-कायकी एकाग्रतासे तुम्हारे गुणोंको नमस्कार ही कर सकता हूँ और वहीं करता हूँ।

—

[२]

प्रभु पतित-पावन, मैं अपावन,
चरन आयो सरन जी;
यो बिरद आप निहार, स्वामी,
मेट जामन मरन जी।
तुम ना पिछान्या, आन मान्या,
देव विविध प्रकार जी;
या बुद्धि-सेती निज न जान्या,
भ्रम गिन्या हितकार जी।१

भव - विकट वनमें करम - बैरी,
ज्ञान - धन मेरो हर्‌यो ;
तब इष्ट भूल्यो, भ्रष्ट होय,
अनिष्ट-गति धरतो फिर्‌यो।
धन घड़ी यो, धन दिवस यो ही,
धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो,
दरस प्रभुको लखि लयो।२
छवि वीतरागी, नगन मुद्रा,
दृष्टि नासापै धरैं ;
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-जुत,
कोटि रवि - छविको हरैं।
मिट गयो तिमिर-मिथ्यात मेरो,
उदय रवि-आतम भयो ;
मो उर हरस ऐसो भयो,
मनु रंक चिंतामनि लयो।३
मैं हाथ जोड़, नवाय मस्तक,
वीनऊँ तुम चरण जी ;
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन,
सुनहु तारन-तरन जी।

जाचूं नहीं सुर - वास, पुनि,
नर-राज परिजन साथ जी;
'बुध' जाचहूं तुम भक्ति भव-
भव, दीजिये शिवनाथ जी।४

शास्त्र-स्तुति

वीर - हिमाचलतैं निकसी,
गुरु-गौतमके मुख-कुंड ढरी है;
मोह - महाचल भेद चली,
जगकी जड़ता-तप दूर करी है।
ज्ञान - पयोनिधि माँहि रली,
बहु भंग-तरंगनिसों उछरी है;
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति,
मैं अँजुली कर शीश धरी है।१
या जग - मन्दिरमें अनिवार
अज्ञान-अँधेर छयो अतिभारी;
श्रीजिनकी धुनि दीप-शिखा सम
जो नहिं होत प्रकाशन-हारी;
तो किस भाँति पदारथ-पाँति,
कहा लहते? रहते अविचारी;

या विधि सन्त कहैं धनि हैं,
धनि हैं जिन-बैन बड़े उपकारी ।२

—

[२]

मिथ्या-तम नाशवेकों, ज्ञानके प्रकाशवेकों,
आपा-पर भासवेकों, भानु-सी बखानी है ।
छहों द्रव्य जानवेकों, बंध-विधि भानवेकों,
स्व-पर पिछानवेकों, परम प्रमानी है ।१
अनुभौ बतायवेकों, जीवके जतायवेकों,
काहू न सतायवेकों, भव्य उर आनी है ।
जहाँ-तहाँ तारवेकों, पारके उतारवेकों,
सुख विसतारवेकों, यही जिनवाणी है ।२

—

[३]

केवलि-कन्ये, वाङ्मय गंगे,
जगदम्बे, अघ नाश हमारे ;
सत्य-स्वरूपे, मंगल-रूपे,
मन-मन्दिरमें तिष्ठ हमारे ।१
जंबूस्वामी गौतम-गणधर
हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे ;

जगतैं स्वयं पार है करके,
दे उपदेश बहुत जन तारे।२

कुंदकुंद, अकलंकदेव अरु,
विद्यानंदि आदि मुनि सारे।
तव कुल-कुमुद चंद्रमा ये शुभ,
शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे।३

तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे,
जगके भ्रम सब क्षय कर डारे ;
तेरी ज्योति निरख लज्जा-वश,
रवि-शशि छिपते नित्य विचारे।४

भव-भय पीड़ित, व्यथित चित्त जन,
जब जो आये सरन तिहारे ;
छिन-भरमैं उनके तब तुमने,
करुणा करि संकट सब टारे।५

जब तक विषय-कषाय नशै नहिं,
कर्म-शत्रु नहिं जाय निवारे ;
तब तक 'ज्ञानानंद' रहै नित,
सब जीवनतैं समता धारे।६

---

[४]

नित पीजौ धी - धारी,
जिन-वानि सुधा-सम जानके।टेक।

वीर-मुखारविन्दत प्रगटी,
जनम - जरा - गद टारी ;
गौतमादि गुरु उर-घट व्यापी,
परम सुरुचि करतारी ।१

सलिल समान कलिल-मल-गंजन,
बुध - मन - रंजनहारी ;
भंजन विभ्रम-धूलि प्रभंजन,
मिथ्या - जलद निवारी ।२

कल्यानक-तरु उपवन-धरनी,
तरनी भव - जल - तारी ;
बन्ध-विदारन पैनी छैनी,
मुक्ति - नसैनी सारी ।३

स्व-पर स्वरूप प्रकाशनको यह,
भानु-कला अविकारी ;
मुनि-मन-कुमुदिनि मोदन शशिभा,
सम-सुख-सुमन सुवारी ।४

जाको सेवत, बेवत निज-पद,
नसत अविद्या सारी।
तीन लोकपति पूजत जाको,
जान त्रिजग - हितकारी ।५
कोटि जीभसों महिमा जाकी,
कहि न सके पविधारी।
'दौल' अल्प-मति केम कहै यह,
अधम - उधारनहारी ।६
नित पीजौ धी - धारी,
जिन-वानि सुधा-सम जानके।

गुरु-बन्दन।

वन्दौं दिगम्बर गुरु-चरन,
जग-तरन-तारन जान ;
जे भरम-भारी रोगको हैं,
राजवैद्य महान।
जिनके अनुग्रह विन कभी,
नहिं कटै कर्म-जँजीर ;
ते साधु मेरे उर वसहु,
मम हरहु पातक-पीर ।१

यह तन अपावन अथिर है,
संसार सकल असार ;
ये भोग विष-पकवानसे,
इह भांति सोच-विचार ।
तप विरचि श्रीमुनि वन बसे,
सब छाँड़ि परिगह भीर ;
ते साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर ।२
जे काच-कंचन सम गिनहिं,
अरि-मित्र एक सरूप ;
निन्दा-बड़ाई सारिखी,
वन-खंड शहर अनूप ।
सुख-दुःख जीवन-मरनमें,
नहिं खुशी, नहिं दिलगीर ।
ते साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर ।३
जे बाह्य परवन वन बसें,
गिरि-गुफा-महल मनोग ;
सिल-सेज समता-सहचरी,
शशि-किरन-दीपक जोग ।

मृग मित्र, भोजन तप-मई,
विज्ञान - निरमल नीर ;
ते साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर ।४

सूखहिं सरोवर जल भरे,
सूखहिं तरंगिनि तोय ;
बाटहिं बटोही ना चलै
जहँ घाम-गरमी होय ;
तिहँकाल मुनिवर तप तपहिं
गिरि-शिखर ठाड़े धीर ;
ते साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर ।५

घनघोर गरजहि घन-घटा,
जल परहि पावस-काल ;
चहुँ ओर चमकहिं बीजुरी,
अति चलै सीरी व्याल ;
तरु-हेठ तिष्ठहिं तब जती,
एकान्त अचल शरीर ;
ते साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर ।६

जब शीत मास तुषारसों,
दाहै सकल बन-राय ;
जब जमै पानी पोखरां,
थरहरै सबकी काय ;
तब नगन निवसैं चौहटैं
अथवा नदीके तीर ;
ते साधु मेरे उर बसहु,
मम हरहु पातक पीर ।७

कर जोर 'भूधर' वीनवै
कब मिलहिं वे मुनिराज ;
यह आश मनकी कब फलै
मम सरहिं सगरे काज ;
संसार-विषम-विदेशमें
जे विना कारण वीर ;
ते साधु मेरे उर बसहु
मम हरहु पातक पीर ।८

क्रोध-मान-माया धरत, लोभ-सहित परिणाम,
ये ही तेरे शत्रु हैं, समझो आतम-राम ।
इन ही चारों शत्रुको, जो जीतै जग-माहिं ;
सो पावहि पथ मोक्षको, यामें धोखो नाहिं ।
—भैया भगवतीदास

भक्तामर-स्तोत्र

कवि गिरिधर शर्मा-कृत

हिन्दी-पद्यानुवाद

हैं भक्त-देव-नत-मौलि-मणिप्रभाके,
उद्योत-कारक, विनाशक पापके हैं;
आधार जो भव-पयोधि पड़े जनोंके,
अच्छी तरा नम उन्हीं प्रभुके पदोंको

श्रीआदिनाथ विभुकी स्तुति मैं करूंगा,
की देवलोकपतिने स्तुति है जिन्होंकी
अत्यन्त सुन्दर जगत्त्रय-चित्तहारी
सुस्तोत्रसे, सकल शास्त्र रहस्य पाके ।२

हूं बुद्धिहीन, फिर भी बुध-पूज्यपाद!
तैयार हूं स्तवनको निर्लज्ज होके;
है और कौन जगमें तज बालको, जो
लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र-बिम्ब ?३

होवे बृहस्पति-समान सुबुद्धि तो भी,
है कौन जो गिन सके तव सद्गुणोंको ?
कल्पान्तवायु-वश सिन्धु अलंघ्य जो है,
है कौन जो तिर सके उसको भुजासे ?४

हूं शक्तिहीन फिर भी करने लगा हूं,
तेरी प्रभो, स्तुति, हुआ वश-भक्तिके मैं
क्या मोहके वश हुआ शिशुको बचाने,
है सामना न करता मृग सिंहका भी ?५

हूं अल्पबुद्धि, बुध-मानवकी हँसीका
हूं पात्र, भक्ति-तव है मुझको बुलाती;
जो बोलता मधुर कोकिल है मधूमें,
है हेतु आम्र-कलिका बस एक उसका ।६

तेरी किये स्तुति, विभो, बहु जन्मके भी
होते विनाश सब पाप मनुष्यके हैं;
भौंरे समान अति श्यामल ज्यों अँधेरा
होता विनाश रविके करसे निशाका ।७

यों मान, की स्तुति शुरू मुझ अल्पधीने,
तेरे प्रभाव-वश, नाथ, वही हरेगी
सल्लोकके हृदयको; जल-विन्दु भी तो
मोती समान नलिनी-दलपै सुहाते ।८

दुर्दोष दूर तव हो स्तुतिका बनाना,
तेरी कथा तक हरे जगके अघोंको;
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही
अच्छे प्रफुल्लित सरोजनको सरोंमें ।९

आश्चर्य क्या, भुवनरत्न, भले गुणोंसे
तेरी किये स्तुति बने तुझसे मनुष्य !
क्या काम है जगतमें उन मालिकोंका
जो आत्म-तुल्य न करें निज-आश्रितोंको ?
अत्यन्त सुन्दर, विभो, तुझको विलोक ,
अन्यत्र आँख लगती नहिं मानवोंकी ।
क्षीराब्धिका मधुर सुन्दर वारि पीके ,
पीना चहे जलधिका जल कौन खारा ?११
जो शान्तिके सुपरमाणु, प्रभो, तनूमें
तेरे लगे, जगतमें उतने वही थे ;
सौन्दर्य - सार जगदीश्वर, चित्तहर्ता ,
तेरे समान इससे नहिं रूप कोई ।१२
तेरा कहाँ मुख सुरादिक नेत्र-रम्य ,
सर्वोपमान विजयी, जगदीश, नाथ !
त्यों ही कलंकित कहाँ वह चन्द्रबिम्ब ,
जो हो पड़े दिवसमें द्युतिहीन फीका ।१३
अत्यन्त सुन्दर कलानिधिकी कलासे ,
तेरे मनोज्ञ गुण, नाथ, फिरें जगोंमें
है आसरा त्रिजगदीश्वरका जिन्होंको ,
रोके उन्हें त्रिजगमें फिरते न कोई ।१४

देवाङ्गना हर सकीं मनको न तेरे,
आश्चर्य नाथ, इसमें कुछ भी नहीं है!
कल्पान्तके पवनसे उड़ते पहाड़,
पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या?
बत्ती नहीं, नहिं धुआँ, नहिं तैल पूर,
भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है;
सारे त्रिलोक बिच है करता उजेला,
उत्कृष्ट दीपक विभो, द्युतिकारि तू है।१६
तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु,
पाते प्रकाश तुझसे जग एकसाथ;
तेरा प्रभाव रुकता नहिं बादलोंसे,
तू सूर्यसे अधिक है महिमा-निधान!१७
मोहान्धकार हरता, रहता उगा ही,
जाता न राहु-मुखमें, न छुपे घनोंसे;
अच्छे प्रकाशित करे जगको, सुहावे,
अत्यन्त कान्तिधर, नाथ, मुखेन्दु तेरा।
क्या भानुसे दिवसमें, निशिमें शशीसे,
तेरे, प्रभो, सुमुख-से तम नाश होते?
अच्छी तरा पक गया जग-बीच धान,
है काम क्या जल-भरे इन बादलोंसे!१९

जो ज्ञान निर्मल, विभो, तुझमें सुहाता,
भाता नहीं वह कभी पर-देवतामें;
होती मनोहर छटा मणि-मध्य जो है,
सो काचमें नहिं; पड़े रवि-बिम्बके भी।२०

देखे भले, अयि विभो, पर-देवता ही,
देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये;
तेरे विलोकन किये फल क्या प्रभो, जो
कोई रमे न मनमें पर-जन्ममें भी?२१

माएँ अनेक जनतीं जगमें सुतोंको,
हैं किन्तु वे न तुझ-से सुतकी प्रसूता;
सारी दिशा धर रहीं रविका उजेला,
पै एक पूरब-दिशा रविको उगाती।२२

योगी तुझे परम-पूरुष हैं बताते,
आदित्य-वर्ण मलहीन तमिस्र-हारी;
पाके तुझे, जय करें सब मौतको भी,
है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष-मार्ग।२३

योगीश, अव्यय, अचिंत्य, अनङ्गकेतु,
ब्रह्मा, असंख्य परमेश्वर, एक, नाना,
ज्ञान-स्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता;
त्यों आद्य, सन्त तुझको कहते अनन्त।२४

तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला,
कल्याण-कर्तृवर शंकर भी तुही है;
तू मोक्ष-मार्ग-विधि-कारक है विधाता,
है व्यक्त, नाथ, पुरुषोत्तम भी तुही है ।२५
त्रैलोक्य-आर्ति-हर नाथ, तुझे नमूं मैं,
हे भूमिके विमल रत्न, तुझे नमूं मैं;
हे ईश सर्व जगके, तुझको नमूं मैं,
मेरे भवोदधि-विनाशि, तुझे नमूं मैं ।२६
आश्चर्य क्या गुण सभी तुझमें समाये,
अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगा ही
देखा न, नाथ, मुख भी नव स्वप्नमें भी,
पा आसरा जगतका सब दोषने तो ।२७
नीचे अशोक तरुके तन है सुहाता
तेरा विभो, विमल रूप प्रकाश-कर्ता;
फैली हुई किरणका, तमका विनाशी,
मानो समीप घनके रवि-बिम्ब ही है ।२८
सिंहासन-स्फटिक रत्न-जड़ा उसीमें
भाता, विभो, कनक-कान्त शरीर तेरा;
ज्यों रत्न-पूर्ण उदयाचल शीशपै जा
फैला स्वकीय किरणें रवि-बिम्ब सोहे ।२८

तेरा सुवर्ण-सम देह, विभो, सुहाता
है, श्वेत कुन्द-सम चामरके उड़ेसे ;
सोहे सुमेरुगिरि, कांचन कान्तिधारी ,
ज्यों चन्द्रकांति-धर निर्झरके बहेसे ।३०

मोती मनोहर लगे जिनमें, सुहाते ,
नीके हिमांशु-सम सूरज-ताप-हारी ;
हैं तीन छत्र शिरपै अतिरम्य तेरे ,
जो तीन लोक परमेश्वरता बताते ।३१

गम्भीर नाद भरता दश ही दिशामें ,
सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता ;
धर्मेशकी कर रहा जय-घोषणा है ,
आकाश बीच बजता यशका नगारा ।३२

गन्धोद - बिन्दु - युत मारुतकी गिराई
मन्दारकादि तरुकी कुसुमावलीकी
होती मनोरम महा सुरलोकसे है
वर्षा, मनो तव लसे वचनावली है ।३३

त्रैलोक्यकी सब प्रभामय वस्तु जीती ,
भामण्डल प्रबल है तव, नाथ, ऐसा !
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्ति-धारी
है जीतता शशि सुशोभित रातको भी।

है स्वर्ग - मोक्ष - पथ - दर्शनका सुनेता,
सद्धर्मके कथनमें पटु है जगोंके।
दिव्यध्वनि प्रकट अर्थमयी, प्रभो, है
तेरी, लहे सकल मानव बोध जिससे।३५

फूले हुए कनकके नव पद्मके-से,
शोभायमान नखकी किरण - प्रभासे;
तूने जहाँ पग धरे अपने, विभो, हैं,
नीके वहाँ विबुध पङ्कज कल्पते हैं।३६

तेरी विभूति इस भाँति, विभो, हुई जो,
सो धर्मके कथनमें न हुई किसीकी;
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र-हर्ता
होता न तेज रवि-तुल्य कहीं ग्रहोंका।३७

दोनों कपोल झरते मदसे सने हैं,
गुंजार खूब करती मधुपावली है;
ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे,
पावें न किंतु भय, आश्रित लोक तेरे।३८

नाना करीन्द्रदल - कुंभ विदारके, की
पृथ्वी सुरम्य जिसने गज - मोतियोंसे;
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उसपै
तेरे पदाद्रि जिसका शुभ असरा है।३९

झालें उठें, चहुं उड़ें जलते अँगारे,
दावाग्नि जो प्रलय-वह्नि समान भासे;
संसार भस्म करने-हित पास आवे,
त्वत्कीर्ति-गान शुभ-वारि उसे शमावे।४०

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिक-कंठ समान काला,
फुंकार सर्प फणको कर उच्च धावे;
निःशंक हो जन उसे पगसे उलाँघे,
त्वन्नाम नाग-दमनी जिसके हिये हो।४१

घोड़े जहाँ हिनहिने, गरजे गजाली,
ऐसे महाप्रबल सैन्य धराधिपोंके;
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाये,
ज्यों अन्धकार, उगते रविके करोंसे।४२

बर्छे लगे बह रहे गज-रक्तके हैं
तालाबसे, विकल हैं तरणार्थ योद्धा;
जीते न जायँ रिपु, संगर बीच ऐसे,
तेरे प्रभो, चरण-सेवक जीतते हैं।४३

हैं काल-नृत्य करते मकरादि जन्तु,
त्यों बाड़वाग्नि अति भीषण सिन्धुमें है;
तूफानमें पड़ गये जिनके जहाज,
वे भी, प्रभो, स्मरणसे तव, पार होते।४४

अत्यन्त पीड़ित जलोदर - भारसे हैं,
है दुर्दशा, तज चुके निज-जीविताशा;
वे भी लगा तव पदाब्ज-रजःसुधाको
होते, प्रभो, मदन-तुल्य सुरूप-देही ।४५

सारा शरीर जकड़ा दृढ़ साँकलोंसे,
बेड़ी पड़ें, छिल गईं जिनकी सुजाँघें,
त्वन्नाम - मंत्र जपते - जपते उन्होंके
जल्दी स्वयं झर पड़े सब बन्ध-बेड़ी ।४६

जो बुद्धिमान इस सुस्तवको पढ़ें हैं,
होके विभीत उनसे भय भाग जाता
दावाग्नि-सिन्धु-अहिका, रण-रोगका, त्यों
पंचास्य, मत्त गजका, सब बन्धनोंका ।४७

तेरे मनोज्ञ गुणसे स्तव - मालिका ये
गूँथी, प्रभो, विविधवर्ण सुपुष्पवाली
मैंने सभक्ति, जनकंठ धरे इसे जो;
सो 'मानतुंग' सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी ।४८

नित्य आयु तेरी झरै, धन गैरे मिल खायं,
तू तो रीता ही रहा, हाथ झुलाता जाय।
अरे जीव, भव-वनविषैं, तेरा कौन सहाय;
काल-सिंह पकरै तुझे, तब को लेत बचाय।

—'बुधजन'

एकीभाव स्तोत्र

[कविवर भूधरदास-कृत हिन्दी-पद्यानुवाद]

वादिराज मुनिराजके, चरन-कमल चित लाय ;
भाषा एकीभावकी, करूँ स्व-पर सुखदाय ।

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी
सो मुझ कर्म-प्रबंध करत भव-भव दुख भारी
ताहि तिहारी भक्ति-जगत-रवि जो निरवारै
तो अब और कलेश कौन सो नाहिं विदारै ।१

तुम जिन जोति-सरूप दुरित-अँधियार निवारी
सो गनेस-गुरु कहैं तत्त्व-विद्या-धनधारी
मेरे चित-घर माहिं बसौ तेजोमय यावत
पाप-तिमिर अवकास तहाँ सो क्योंकर पावत

आनँद-आँसू बदन धोय तुमसों चित सानै
गदगद सुरसों सुयश-मंत्र पढ़ि पूजा ठानै
ताके बहुविधिव्याधि-व्याल चिरकाल निवासी
भाजैं थानक छोड़ देह-बाँबईके वासी ।३

दिवितैं आवनहार भये भवि-भाग उदयबल
पहले ही सुर आय कनकमय कीय महीतल
मन-गृह ध्यान-दुआर आय निवसो जगनामी
जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी !

प्रभु सब जगके विना हेतु बान्धव उपकारी
निरावरन सर्वज्ञ, शक्ति जिनराज तिहारी
भक्ति-रचित मम चित्त-सेज नित वास करोगे
मेरे दुख-सन्ताप देखि किम धीर धरोगे ?५

भव-वनमें चिरकाल भ्रमो कछु कहिय न जाई
तुम थुति-कथा-पियूष-वापिका भागन पाई
शशि तुषार घनसार हार शीतल नहिं जा सम
करन न्हौन ता माहिं क्यों न भवताप बुझै मम

श्रीविहार परिवाह होत शुचि-रूप सकल जग
कमल कनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग
मेरो मन-सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै
अब सो कौन कल्यान जो न दिनदिन ढिंग आवै

भव तज सुखप्रद बसे काममद सुभट सँहारे
जो तुमको निरखंत, सदा प्रिय दास तिहारे
तुम वचनामृत पान भक्ति-अंजुलिसों पीवै
तिन्हैं भयानक क्रूर रोग-रिपु कैसे छीवै ।८

मानथम्भ पाषान आन पाषान पटन्तर
ऐसे और अनेक रतन दीखैं जग-अन्तर
देखत दृष्टि-प्रमान मान-मद तुरत मिटावै
जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै

प्रभुतन-पर्वत-परस पवन उरमें निबहै है
तासों ततछिन सकल रोग-रज बाहिर ह्वै है
जाके ध्यानाहूत बसो उर-अम्बुज माहीं
कौन जगत उपकार करन समरथ सो नाहीं !

जनम-जनमके दुःख सहे सब ते तुम जानो
याद किये मुझ हिये लगैं आयुध-से मानो
तुम दयाल, जगपाल, स्वामि, मैं शरन गही है
जो कछु करनो होय करो परमान वही है।११

मरन समय तुम नाम-मंत्र जीवकतैं पायो
पापाचारी स्वान प्रान तज अमर कहायो
जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरन्तर
इन्द्र सम्पदा लहै कौन संशय इस अन्तर!१२

जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधै
अनवधि सुखकी सार भक्ति-कूँची नहिं लाधै
सो शिव-वांछक पुरुष मोक्ष-पट केम उघारै
मोह-मुहर दिढ़ करी मोक्ष-मन्दिरके द्वारै!१३

शिवपुर-केरो पन्थ पाप-तमसों अति छायो
दुख-सरूप बहु कूप-खाड़सों विकट बनायो
स्वामी, सुखसों तहाँ कौन जन मारग लागैं
प्रभु-प्रवचन-मणिदीप जौनके आगैं-आगैं।१४

कर्म-पटल भू माहिं दवी आतम-निधि भारी
देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं उघारी
तुम सेवक ततकाल ताहि निहचैं करि धारै
थुति-कुदालसों खोद बंध-भू कठिन विदारै ।

स्यादवाद-गिरि उपज मोक्ष-सागरलों धाई
तुम चरणाम्बुज-परस भक्ति-गंगा सुखदाई
मो चित निर्मल थयो न्हौन-रुचि-पूरव तामैं
अब वह हो न मलीन कौन, जिन, संशय यामैं

तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो
मैं भगवान समान, भाव यों बरतै मेरो ;
यदपि झूठ है, तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै
तुव प्रसाद सकलंक जीव वांछित फल पावै।

वचनजलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै
भंग-तरंगिनि विकथ-वाद-मल मलिन उथापै
मन-सुमेरुसों मथैं ताहि जे सम्यग्ज्ञानी
परमामृतसों तृपत होहिं ते चिरलों प्रानी।१८

जो कुदेव छवि-हीन वसन-भूषन अभिलाखै
वैरीसों भयभीत होय, सो आयुध राखै
तुम सुन्दर सर्वंग, शत्रु समरथ नहिं कोई
भूषन-वसन गदादि ग्रहन काहेको होई ? १९

सुरपति सेवा करै, कहा प्रभु, प्रभुता तेरी
सो सलाघना लहै, मिटै जगसों जगफेरी
तुम भवजलधि जिहाज तोहि शिवकंत उचरिये
तुही जगतजन-पाल, नाथ, थुतिकी थुति करिये

बचन-जाल जड़-रूप, आप चिन्मूरति झाँई
तातैं थुति आलाप नाहिं पहुँचै तुम ताँई
तौ भी निर्फल नाहिं भक्ति-रस-भीने बायक
सन्तनको सुरतरु समान वांछित वर-दायक।

कोप कभी नहिं करो, प्रीति कबहू नहिं धारो
अति उदास बेचाह चित्त, जिनराज, तिहारो
तदपि आन जग बहै बैर तुम निकट न लहिये
यह प्रभुता जगतिलक कहाँ तुमविन सरदहिये

सुर-तिय गावैं सुजस सर्व गति ज्ञान-सरूपी
जो तुमको थिर होय नमैं भवि आनँद-रूपी
ताहि छेमपुर चलन बाट बाकी नहिं हो है
श्रुतके सुमरन माहिं सो न कबहूं नर मोहै।

अतुल चतुष्टय-रूप तुम्हें जो चितमैं धारै
आदरसों तिहुँकाल माहिं जग-थुति विस्तारै
सो सुकृत शिव-पंथ भक्ति-रचना कर पूरै
पंचकल्यानक ऋद्धि पाय निहचैं दुख चूरै।२४

अहो जगतपति पूज्य, अवधिज्ञानी मुनि हारे
तुम गुन कीर्तन माहिं, कौन हम मंद बिचारे
थुति-छलसों तुम-विषैं देव आदर बिस्तारे
शिव-सुख पूरनहार कलप-तरु यही हमारे।

वादिराज मुनितैं अनु वैयाकरणी सारे;
वादिराज मुनितैं अनु तार्किक विद्यावारे।
वादिराज मुनितैं अनु हैं काव्यनके ज्ञाता;
वादिराज मुनितैं अनु हैं भविजनके त्राता।

मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषा सूत्र मंझार;
भक्तिमाल 'भूधर' करी, करो कंठ सुखकार।

जैसे फिटकिरी लोद्र, हरडेकी पुट विना,
स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें;
भीग्या रहे चिरकाल, सर्वथा न होय लाल,
भेदे नांहि अन्तर सुपेदी रहे चीरमें।
तैसे समकितवन्त, राग-द्वेष-मोह विन,
रहे निशि-वासर परिग्रहकी भीरमें;
पूरब करम हरे, नूतन न बन्ध करे,
जाचे न जगत-सुख, राचे न शरीरमें।

—महाकवि बनारसीदास

महाकवि बुधजन-कृत
छहढाला

मंगलाचरण

सर्व द्रव्यमें सार, आतमको हितकार है ;
नमहुं ताहि चित धार, नित्य निरंजन जानके।

चौपाई

आयु घटत तेरी[1] दिन-रात,
होय निचीत[2] रह्यो क्यों भ्रात ?
जोबन, धन, तन, किंकर[3], नारि,
सब हैं जल-बुद्‌बुद[4] उनहारि।१
पूरन आयु बधै खिन[5] नाहिं,
दये कोटि धन तीरथ माँहिं ;
इन्द्र चक्रपति हू कहा करैं,
आयु अन्तनैं वे हू मरैं।२

---

(१) अपनी आत्मा या मनको समझानेके लिए, उसे शरीरसे भिन्न, 'तेरी' कहकर सम्बोधन किया गया है। (२) निचीत=निश्चिन्त। (३) किंकर=सेवक आदि। (४) जल-बुद्‌बुद=पानीका बबूला ; उनहारि=समान ; अर्थात् ये सब पानीके बुद्‌बुदेके-समान नष्ट होनेवाले हैं। (५) बधै=बढती ; खिन=क्षण ; अर्थात निश्चित आयुसे एक क्षण भी ज्यादा नहीं जी सकते।

योे संसार असार महान,
सार आपमें 'आपा'[1] जान ;
सुखतैं दुख, दुखतैं सुख होय,
समता चारों गति[2] नहिं कोय ।३

अनंतकाल गति-गति दुख लैह्यो[3],
बाकी काल अनन्तो कह्यो ;
सदा अकेलो 'चेतन'[4] एक,
ते माँहीं गुन बसत अनेक ।४

'तूं'[5] न किसीका, कोइ नहिं तोय[6],
तेरौ सुख-दुख 'तो'कों होय ;
यातैं 'तो'कों 'तू' उर धार,
पर-द्रव्यनितैं[7] मोह निवार[8] ।५

हाड़-माँस तन लिपटी चाम,
रुधिर-मूत-मल-पूरित धाम[9] ;

---

(१) आपमें आप=आत्मामें अपनापन । (२) स्वर्ग, नरक, मनुष्य और तिर्यंच गति । (३) लह्यो=लहा, पाया । (४) चेतन=आत्मा यानी मैं स्वय । (५) आत्मा । (६) तेरा । (७) आत्मासे भिन्न शरीर आदि संसारके सभी पदार्थ । (८) निवारण कर, यानी मोहको छोड़ दे । (९) खून मूत्र-मलसे भरा घर ।

सोहू थिर न रहै, खय होय,
याको तजैं मिलै शिवलोय।६
हित-अनहित तन-कुल-जन माँहिं,
खोटी बाँनि हरो क्यों नाहिं ?
यातैं पुद्गल-करमन जोग,
प्रनवै दायक सुख-दुख रोग।७
पाँचों इन्द्रिनके तज फैल,
चित्त निरोधि, लागि शिव-गैल;
'तो' में तेरी तू करि सैल,
कहा रह्यो है कोल्हू बैल ?८
तजि कषाय, मनकी चल चाल,
ध्यावो अपना रूप रसाल;

---

(१) सो भी स्थिर (स्थायी) नहीं रहता, क्षय (नष्ट) हो जाता है। (२) इसकी ममता तजनेसे मोक्ष मिलती है। (३) देह, कुटुम्ब और जन-समाजमें इष्टता और अनिष्टताका भाव। (४) अनादिसे चली आई हुई बुरी आदतको। (५) इसमें पुद्गल-कर्मोंके संयोगसे सुख-दुःखदायक रोग हुआ करता है। (६) इन्द्रियोंके काम या दासता छोड़कर। (७) चित्त या मनको वश करके मोक्ष-मार्गमें लग। (८) तू अपनी आत्मामें आप सैर कर। (९) क्यों झूटमूठको कोल्हूके बैलकी तरह अपने ज्ञानपर मिथ्यात्वकी पट्टी बाँधे हुए दूसरोंके लिए ससारमें घूम रहा है?

झरैं करम[3]-बन्धन दुख-दान,
बहुरि प्रकाशै केवल-ज्ञान ।९

तेरो जनम हुवो नहीं जहाँ,
ऐसो खेतर[1] नाहीं कहाँ;

याही जनम-भूमिका रैचो[2],
चलो निकसि तो विधितैं[3] बचो ।१०

सब व्योहार क्रियाका ज्ञानैं[4],
भयो अनन्ती बार प्रधान;

निपट[5] कठिन 'अपनी' पहचानैं[6],
ताकों पावत होत कल्यान ।११

धरम सुभाव आप सरधानैं[7],
धर्म न शील, न न्हान, न दान;

'बुधजन' गुरुकी सीख विचार,
गहो[9] धाम आतम-हितकार ।१२

---

(१) तीन लोकके अतर्गत क्षेत्र । (२) इस जन्म-मरणकी दुःख-पूर्ण भूमिमें रच रहा है । (३) आठ कर्मोंसे । (४) सम्यग्दर्शन रहित वाहरकी क्रिया या चारित्रका ज्ञान । (५) निपट=अत्यन्त। (६) अपनी अन्तरात्माकी पहचान वहुत ही कठिन है । (७) धर्मका स्वरूप सम्यक्‌दर्शन (अपनी अन्तरात्मापर विश्वास करना) है। (८) जिनेन्द्र भगवान या उनकी वाणीके अनुसार चलनेवाले निर्ग्रन्थ आचार्य आदिकी शिक्षा । (९) गहो=ग्रहण करो ।

दूसरी ढाल

(नरेन्द्र छन्द या 'जोगीरासा')

सुन रे जीव[1], कहत हूं तोकों,
तेरे हितके काजै[2];
है निश्चल मन, जब तू धारै,
तब कछु-इक तो लाजै[3]।
जो दुखतैं थावर-तन[4] पायो,
वरन सकूँ सो नाहीं;
ठारै बारै[5] मुवो अरु जियो,
एक साँसके माहीं ।१
काल अनन्तानन्त रह्यो यों,
पुनि विकलत्रय[6] हूवो;
बहुरि असैनी[7] निपट अज्ञानी
छिन-छिन जीयो, मूवो[8]।

---

(१) हे मेरी अन्तरात्मा, सुन। (२) काजै=लिए। (३) कछुइक तो लाजै=कुछ तो शरम आयेगी। (४) थावर-तन=पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वृक्षादि वनस्पति-शरीर। (५) अठारह बार। (६) दो-इन्द्रिय, ते-इन्द्रिय और चौ-इन्द्रिय जीव। (७) जिन प्राणियोंके 'मन' नहीं होता, उन्हें असैनी या असञ्ज्ञी कहते हैं। (८) पैदा हुआ, और मरता रहा।

ऐसें जनम गयो करमन-वश[1],
तेरो वश नहिं चाल्यो;
पुण्य उदय सैनी[2] पशु हूवो,
तब हू ज्ञान न भाल्यो[3] ।२

जबर मिल्यो तिन तोहि सतायो,
निबल मिल्यो, तैं खायो;
मात तिया-सम भोगी[4] पापी,
तातैं नरक सिधायो[5] ।

कोटिक बीछू काटत जैसें,
ऐसी भूमि तहाँ है;
रुधिर-राध-परवाह[6] बहत है,
दुरगँध निपट[7] जहाँ है ।३

---

(१) अपने उपार्जित कर्मोंके वशीभूत होकर इस आत्माने पराधीनतामें इस तरहके अनेक जन्म-मरण किये हैं, जहाँ उसका कुछ भी वश नहीं चला। (२) मन-सहित पञ्चेन्द्रिय पशु। (३) फिर भी ज्ञान नहीं पाया। (४) यहाँ तक पापी कि माताके साथ भी स्त्री-जैसा भोग करनेवाला;—फिर और-और पापोंकी तो शुमार ही क्या? (५) सिधायो=गया। (६) खून और पीवकी नदी। (७) निपट=बहुत ही ज्यादा; दुरगँध=बदबू।

घाव करत असि-पत्र[1] अंगमें,
शीत-उष्ण तन गालैं[2] ;
कोई काटै करवत[3] कर गहि,
कोई पावक[4] जालै ।
जथाजोग सागर-थिति भुगतै[5],
दुखको अन्त न आवै ;
कर्म-विपाक असाहीं[6] है तो,
मानुष-गति तब पावै ।४

मात-उदरमें रहै गींदँ[7] ह्वै,
निकसत ही बिलल्लावै[8] ;
डंभा, दाँत, गला, बिसफोटक,
डाँकिनितैं बचि[9] जावै ;

(१) असि = तलवार ; पत्र = पत्ता ; अर्थात् तलवार-जैसी धारवाले (पेड़के) पत्ते। (२) सरदी-गरमी ऐसी कि शरीर गल-गल जाता है। (३) करवत=करौत या आरा। (४) पावक=आग, जालै=जलाता है। (५) यथायोग्य यानी जिस नरकमें जितने सागरकी आयु हो, उसको पूरा भोगता है। (६) ऐसा ही कोई प्रबल शुभ कर्मका उदय आवे, तब। (७) गर्भावस्थामें माके पेटमें सिमटा हुआ उलटा टँगा रहता है। (८) बिललावै=फड़फड़ाता है। (९) बचपनमें इन सब आपत्तियोंसे बच जाय, तब कहीं-

तौ जोबनमें भामिनिके सँग,
निशि-दिन भोग रचावै[1];
अन्धा है वन्धे[2] दिन खोवै,
बूढ़ा नार हलावै[3]।५

जम पकरै, तब जोर न चालै,
सैनासैन बतावै[4];
मन्द-कषायँ[5] होय तो भाई,
भवनत्रक-पद[6] पावै।
परकी सम्पति लखि अति झूरै[7],
कै रति[8] काल गँवावै;
आयु-अन्त माला मुरझावै,
तब लखि-लखि पछतावै।६

---

(१) तो यौवनमें रात-दिन भामिनी (स्त्री) के साथ भोग-विलासमें लीन हो जाता है। (२) रोजगार-धन्धेमें। (३) अन्तमें बूढ़ा हो जाता है, तब शरीर शिथिल हो जानेसे धर्म-ध्यान कुछ भी करते नहीं बनता। (४) अन्तिम दशामें जब मरनेका समय आता है, तब (समाधि-मरणसे सद्गति प्राप्त करना तो दूर रहा) जबान बन्द हो जानेसे अधूरे सांसारिक कार्मोंकी पूर्तिके लिए इशारे करते-करते दुर्लभ मनुष्य-जन्मसे हाथ धोकर दूसरी पर्यायमें चला जाता है। (५) क्रोध, मान, माया, लोभ और प्रमाद घट जाय, तब कहीं। (६) भवनवासी देव हो सकता है। (७) कुढ़ता है। (८) या भोगविलासमें समय गँवाता है।

चवै[1] तहाँतैं थावर होवै,
रुलिहै काल अनन्ता ;
या विधि पंच-परावृर्त[2] पूरत,
दुखको नाहीं अन्ता।
काल-लब्धि, जिन-गुरु-किरपातैं[3],
आप 'आप'को जानै ;
तब ही 'बुधजन' भवदधि तरिकैं,
पहुंचि जाय शिव-थानै[4]।७

तीसरी ढाल
(पद्धरि छन्द)

या विधि भव-वन माहिं जीव
बस-मोह[5] गहल[6] सूतै सदीव ;
उपदेश तथा सहजै प्रबोध[7]
तब ही जागै ज्यों उठत जोध।१
जब चितवत अपने माहिं आप,
हूं चिदानन्द, नहिं पुण्य-पाप ;

---

(१) मरनेपर। (२) 'पंच-परावृत' का स्वरूप संक्षेपमें समझाना कठिन है, इसलिए विद्वानोंसे समझना चाहिए। (३) जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी या गुरुकी कृपासे। (४) मोक्ष-स्थान। (५) मोहनीय कर्म-वश। (६) गाफिल। (७) अधिगमज और निसर्गज सम्यग्दर्शन-ज्ञान।

मेरो नाहीं है राग-भाव[1],
ये तो विधि-वश उपजे विभाव[2]।
हूं नित्य निरंजन[3], सिध[4] समान,
ज्ञानावरनी आच्छाद ज्ञान[5];
निश्चय सुध इक, व्योहार भेव[6],
गुन गुनी, अंग अंगी, अछेव[7]।३
मानुष, सुर, नारक, पशु प्रजाय[8]
शिशु, युवा, वृद्ध, बहुरूप काय;
धनवान, दरिद्री, दास, राव,
ये तो विडम्बना[9], मुझ न भाव।४
रस, फरस, गन्ध, वरनादि नाम
मेरे नाहीं, मैं ज्ञान-धाम[10];

---

(१) आत्मासे भिन्न राग-द्वेष आदि विभाव। (२) ये तो कर्मोंके वश उलटे भाव उत्पन्न हुए हैं। (३) राग-द्वेष-रहित शुद्धात्मा। (४) कर्ममल-रहित सिद्ध। (५) ज्ञानावरणी कर्मने मेरा अनन्त ज्ञान ढक रखा है। (६) निश्चयनयसे आत्माका शुद्ध रूप ही सत्य है, उसमें कोई भेद नहीं। भेद सिर्फ व्यवहारनयकी अपेक्षासे है। (७) गुण=आत्माका ज्ञान-दर्शन ; गुणी=आत्मा, अछेव=अभेद। अर्थात् निश्चयनयसे गुण और गुणीमें कोई भेद नहीं; जैसे अग और अगीमें कोई भेद नहीं। (८) प्रजाय=पर्याय। (९) विडम्बना=असत्य। (१०) ज्ञान-धाम=ज्ञानका स्थान, ज्ञानमय।

हूं एक रूप, नहिं होत और,
मुझमें प्रतिबिम्बित सकल ठौर।५
तन पुलकित, उर हरषित सदीव,
ज्यों भई रंक-घर रिधि[1] अतीव ;
जब प्रबल अप्रत्याख्यान[2] थाय,
तब चित-परनति[3] ऐसी उपाय।६
सो सुनो भविक, चित धारि कान,
वरनत हूं ताको विधि-विधान ;
सब करै काज, घर माहिं वास,
ज्यों भिन्न कमल जलमें निवास[4]।
ज्यों सती अंग माहीं सिंगारि
अति करत प्यार ज्यों नगर-नारि ;
ज्यों धाय लड़ावत आन बाल,
त्यों भोग करत नाहीं खुशाल।८
जहँ उदय मोह-चेष्टित प्रभाव,
नहिं होय रंचहू त्याग भाव ;

---

(१) रिद्धि। (२) अप्रत्याख्यानावरण कषाय होनेपर। (३) आत्माकी परिणति। (४) सासारिक सब काम करता हुआ भी, जलमें कमलकी तरह, हमेशा पर-परिणतिसे अपनेको भिन्न समझता है।

तहँ करै मन्द खोटी कषाय,
घरमें उदास है, अथिर ध्याय[1] ।९
सबकी रक्षा जुत-न्याय-नीति
जिन-शासन गुरुकी दिढ़ प्रतीति;
बहु रुलै[2] अर्ध-पुद्गल-प्रमान
अन्तरमुहूर्त ले परम-थान[3] ।१०
वे धन्य जीव, धनि भाग सोय,
जाके ऐसी परतीति जोय;
ताकी महिमा है स्वर्ग लोय,
'बुधजन' भाषैं मोतैं न होय ।११

चौथी ढाल

(सोरठा)

ऊग्यो आतम-सूर, दूर भयो मिथ्यात-तम;
अब प्रगटे गुन भूर[4], तिनमें कछुइक कहत हूं ।१
शंका मनमें नाहिं, तत्त्वारथ - सरधानमें;
निरवांछा चित माहिं, परमारथमें रत रहै ।२
नैंक[5] न करत गिलान, बाह्नि[6] मलिन मुनि-तन लखैं;
नाहीं होत अजान, तत्त्व-कुतत्त्व विचारमें ।३

(१) ससारको अनित्य जानकर निर्लिप्त भावसे घरमें रहता है।
(२) भ्रमण करता है। (३) मोक्ष। (४) बहुत।
(५) जरा भी। (६) बाह्य, बाहरी।

उरमें दया विशेष, गुन प्रगटै औगुन ढकै;
शिथिल धर्मतैं देख, जैसैं-तैसैं दिढ़ करै।४
साधरमी पहिचान, धरै हेत[1] गोवत्स[2] लौं;
महिमा होत महान, धर्म-काज ऐसैं करै।५
मद नहिं जो नृप तात, मद नहिं भूपति-ज्ञानको;
मद नहिं विभौ[3] लहात, मद नहिं सुन्दर रूपको।६
मद नहिं जो विद्वान्, मद नहिं तनमें जो मदन;
मद नहिं जो परधान, मद नहिं सम्पति-कोपको।७
हूवो आतम-ज्ञान, तजि रागादि विभाव पर[4];
ताकैं ह्वै क्यों मान, जात्यादिक वसु[5] अथिरको।८
वन्दत है अरहन्त, जिन-मुनि जिन-सिद्धान्तको;
नवै न देख महन्त, कुगुरु कुदेव कुग्रन्थको[6]।९
कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि सेवका[7];
परशंसा पट भेव, करै न समकितवान है।१०

---

(१) स्नेह, प्रेम। (२) गाय और बछडेके समान साधर्मी भाइयोंसे प्रेम रखता है। (३) वैभव। (४) राग-द्वेष आदि विभाव, जो आत्मासे भिन्न हैं। (५) उसके जातिमद आदि आठ अस्थिर मद नहीं होते। (६) सम्यग्दृष्टि मिथ्या (झूठे) देव-गुरु-शास्त्रको नमस्कार नहीं करता। (७) कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रकी सेवा नहीं करता।

प्रगटा इसा सुभाव, करा अभाव मिथ्यातका ;
वन्दै ताके पाँव, 'बुधजन' मन-वच-कायतैं ।११

पाँचवीं ढाल
(चाल छन्द)

तिरजंच मनुप दोउ गतिमें,
व्रत-धारक, सरधा चितमें ;
सो अगलितं[1] नीर न पीवै,
निशि-भोजन तजत सदीवै ।१
मुख अभग्व वस्तु नहिं लावै,
जिन-भक्ति त्रिकाल रचावै ;
मन-वच-तन कपट निवारै,
कृत-कारित-मोद सँवारैं[2] ।२
जैसी उपशमत कपायाँ[3],
तैसा तिन त्याग बनाया ;
कोउ सात विसनको त्यागै,
कोउ अनुव्रतमें मन पागै ।३

---

(१) अनछना पानी नहीं पीता। (२) मिथ्यात्व-पोपक काम स्वय करने, दूसरेसे कराने और दूसरेके किये हुए कामके अनुमोदन करनेमे अपनेको बचाये रखता है। (३) जिसकी जैसी कपायें शान्त हुई हैं, वह वैसा त्याग करता है।

त्रस जीव कभू नहिं मारै,
विरथा थावर न संहारै ;
पर-हित विन झूठ न बोलै,
मुख साँच विना नहिं खोलै ।४
जल-मृतिका विन धन सबहू,
विन दियो लेय नहिं कबहू ;
ब्याही वनिता विन नारी,
लघु बहिन, बड़ी महतारी ।५
तिसनाका जोर संकोचै,
ज्यादा परिग्रहको मोचै ;
दिसकी मरजादा लावै,
बाहर नहिं पाँव हिलावै ।६
ताहूमें पुर, सर, सरिता,
नित राखत अघतैं डरता ;
सब अनरथ-दंड न करिहै,
छिन-छिन निज-धर्म सुमरिहै ।७
दर्व, थान, काल, सुध भावै,
समता सामायिक ध्यावै ;
पोषह एकाकी हो है,
निष्किंचन मुनि ज्यों सोहै ।८

परिग्रह परिमान विचारै,
नित नेम भोगका धारै;
मुनि आवन विरिया जावै,
नव जोग असन मुख लावै ।९

ये उत्तम किरिया करता,
नित रहै पापतैं डरता;
जब निकट मृत्यु निज जानै,
तब ही सब ममता भानै ।१०

ऐसे पुरुषोत्तम केरा,
'बुधजन' चरननका चेरा;
वे निश्चय सुर-पद पावैं,
थोरे दिनमें शिव जावैं ।११

छठी ढाल

(चाल "अहो जगतगुरु देव")

अथिर ध्याय परजाय, भोगतैं होय उदासी;
नित्य निरंजन जोति, आतमा घटमें भासी ।१
सुत-दारादि बुलाय, सबनितैं मोह निवारा;
त्यागि शहर-धन-धाम, वास वन बीच विचारा ।२

भूषन वसन उतारि, नगन ह्वै आतम चीना ;
गुरु ढिंग दीक्षा धारि, सीस-कच लौंच जु कीना ।३
त्रस-थावरका घात, त्याग, मन-वच-तन लीना ;
झूठ वचन परिहार, गहै नहिं जल विन दीना ।४
चेतन जड़ तिय भोग,-तज्या, गति-गति दुखकारा;
अहि-कंचुकि ज्यों जान, चित्ततैं परिग्रह डारा ।५
गुपति पलनके काज, कपट मन-वच-तन नाहीं ;
पाँचों सुमति सँवारि, परीषह सहिहै आहीं ।६
छाँड़ि सकल जंजाल, आप करि आप 'आप'में ;
अपने हितकों आप, करौ ह्वै शुद्ध जापमें ।७
ऐसी निश्चल काय, ध्यानमें मुनिजन केरी ;
मानौ पाथर-रची, किधौं चितराम उकेरी ।८
चार घातिया नाशि, ज्ञानमें लोक निहारा ;
दे जिन-मत आदेश, भविकको दुखतैं टारा ।९
बहुरि अघाते तोरि, समयमें शिवपद पाया ;
अलख अखंडित जोति, शुद्ध चेतन ठहराया ।१०
काल अनन्तानन्त, जैसेके तैसे रहिहैं ;
अविकारी अविनाश, अचल अनुपम सुख लहिहैं ।११
ऐसी भावन भाय, ऐसे जे कारज करिहैं ;
ते ऐसे ही होय, दुष्ट करमनकों हरिहैं ।१२

जिनके उर विश्वास, वचन-जिनशासन नाहीं ;
ते भोगातुर होय, सहैं दुख नरकन माँहीं ।१३

सुख-दुख पूर्व-विपाक, अरे मत कलपै जीया ;
कठिन-कठिनतें मीत, जनम मानुष तैं लीया ।१४

सो विरथा मत खोय, जोय आपा पर भाई ;
गई न लाभै फेरि, उदधिमें डूबी राई ।१५

भला नरकका वास, सहित समकित जे पाता ;
बुरे बने जे देव, नृपति, मिथ्यामत-माता ।१६

नहीं खरच धन होय, नहीं काहूतें लरना ;
नहीं दीनता होय, नहीं घरका परिहरना ।१७

समकित सहज सुभाव, 'आप' का अनुभव करना ;
या विन जप-तप वृथा, कष्टके माहीं परना ।१८

कोटि बातकी बात, अरे 'बुधजन' उर धरना ;
मन-वच-तन सुध होय, गहो जिनमतका सरना ।१९

ठारासै पचास, अधिक नव संवत जानो ;
तीज सुकुल वैसाख, 'ढाल पट्' शुभ उपजानो ।

वैशाख शुक्ला ३, संवत् १८५९]

आत्म-जागरण

[भैया भगवतीदास-कृत 'सूवा-बत्तीसी']

नमस्कार जिनदेवकों, करों दुहूँ कर जोर ;
'सुवा-बतीसी' सुरस मैं, कहूँ अरिन-दल मोर ।१

आतम-सुवा सुगुरु-वचन, पढ़त रहै दिन-रैन ;
करत काज अघ-रीतिके, यह अचरज लखि नैन ।२

सुगुरु पढ़ावैं प्रेमसों, यहू पढ़त मन लाय ;
घटके पट जो ना खुलें, सबहि अकारथ जाय ।३

सुवा पढ़ायो सुगुरु बनाय ;-'करम-बनहि जिन जइयो भाय। भूले-चूके कबहु न जाहु; लोभ-नलिनिपै चुगा न खाहु ।४। दुर्जन मोह दगाके काज; बाँधी नलिनी तल धर नाज। तुम जिन बैठहु सुवा सुजान; नाज विषय-सुख लहि तिहँ थान। जो बैठहु तो पकरि न रहो; जो पकरो तो हद जिन गहो। जो हद गहो तो उलटि न जाव; जो उलटो तो तजि, भजि धाव।' इह विध सुवा पढ़ायो निच्त; सुवटा पढ़िकें भयो विचित्त। पढ़त रहै निशि-दिन ये बैन; सुनत लहैं सब प्रानी चैन ।७।

इक दिन सुवटै आई मनै; गुरु-संगति तज, भजि गयो वनै। बनमें लोभ-नलिनि अति बनी; दुर्जन मोह दगाको तनी ।८। ता नर विषय-भोग-अन धरे; सुवटै जान्यो ये सुख खरे। उतरौ विषय-सुखनके काज; बैठ नलिनिपै बिलसै राज ।९। बैठो लोभ-नलिनिपै जबै; विषय-स्वाद-रस लटको तबै। लटकत तरैं, उलटि गये भाव; तर मुंडी, ऊपर भये पाँव ।१०। नलिनी दृढ़ पकरे पुनि रहै; मुखतैं वचन दीनता कहै। कोउ न तहाँ छुड़ावनहार; नलिनी पकरे करहि पुकार ।११। पढ़त रहै गुरुके सब बैन; जे-जे हितकर सिखये ऐन। 'सुवटा बनमें उड़ जिन जाहु; जाहु तो भूलि खता मत खाहु ।१२। नलिनीके जिन जइयो तीर; जाहु तो तहाँ न बैठहु बीर। जो बैठो तो दृढ़ जिन गहो; जो दृढ़ गहो तो पकरि न रहो ।१३। जो पकरो तो चुगा न खाव; जो तुम खाव तो उलटि न जाव। जो उलटो तो तजि भजि

धाव; इतनी सीख हिरदयमें लाव ।१४।'
ऐसें वचन पढ़त पुनि रहै; लोभ-नलिनि
तजि भज्यो न चहै। आयो दुर्जन
दुर्गति-रूप; पकड़े सुवटा सुन्दर भूप।१५।
डारे दुखके जाल मझार; सो दुख कहत
न आवे पार। भूख-प्यास बहु संकट
सहै; परबस परो, महा दुख लहै ।१६।
सुवटाकी सुधि-बुधि सब गई; यह तो
बात और कछु भई! आय परो दुखसागर
माहिं; अब इततैं कितको भजि जाहिं।१७।
केतो काल गयो इह ठौर; सुवटा जियमें
ठानी और। यह दुख-जाल कटै किह
भाँति; ऐसी मनमें उपजी ख्याँति।१८।
रात-दिना प्रभु सुमरन करै; पाप-जाल
काटन चित धरै। क्रम-क्रम कर काट्यो
अघ-जाल; सुमरत फल भयो दीनदयाल।
अब इततैं जो भजिकैं जाउँ; तो नलिनीपै
बैठि न खाउँ। पायो दाव, भज्यो
ततकाल; तज दुर्जन दुर्गति-जंजाल।२०।
आयो उड़त बहुरि बन माहिं; बैठ्यो

नर-भव-द्रुमकी छाँहिं। तित इक साधु महा मुनिराय; धर्म-देशना देत सुभाय। यह संसार कर्म-वन रूप; ता माँहिं चेतन-सुआ अनूप पढ़त रहै गुरु-वचन विशाल; तौहु न अपनी करै सँभाल।२२। लोभ-नलिनिपै बैठ्यो जाय; विषय-स्वाद-रस लटक्यो आय। पकरहि दुर्जन दुर्गति परै; तामें दुख बहुते जिय भरै।२३। सो दुख कहत न आवै पार; जानत जिनवर ज्ञान-मँझार। सुनतहि सुवटो चौंक्यो आप; यह तो मोहि परो सब पाप।२४। ये दुख तौ सब मैं ही सहे, जो मुनिवरने मुखतैं कहे। सुवटा सोचै हिये मँझार; ये गुरु साँचे तारनहार।२५। मैं शठ फिर्‌यो करम-वन माहिं; ऐसे गुरु कहूँ पाये नाहिं। अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो; साँचे गुरुको दर्शन लह्यो।२६। गुरुकी थुति कर बारम्बार; सुवटा सोचै हिये मँझार। सुमरत 'आप', पाप भज गयो; घटके पट खुल सम्यक थयो।२७।

समकित होत लखी सब बात; यह मैं, यह पर-द्रव्य विख्यात। चेतनके गुण 'निज'-माँहिं धरे; पुद्गल रागादिक परिहरे।२८। 'आप' मगन अपने गुणमाहिं; जन्म-मरण भय जिनको नाहिं। सिद्ध समान निहारत हिये; कर्म-कलंक सबहि तजि दिये।२९। ध्यावत 'आप' माहिं जगदीश; दुहुं पद एक बिराजत ईश। इहविधि सुवटो ध्यावत ध्यान; दिन प्रतिदिन प्रगटत कल्यान।३०। अनुक्रम शिव-पद जियको भयो; सुख अनन्त बिलसत नित नयो। सत-संगति सबको सुख देय; जो कछु हियमें ज्ञान धरेय।३१। केवलि-पद आतम अनुभूत; घट-घट राजत ज्ञान सँजूत। सुख अनन्त बिलसै जिय सोय; जाके निज-पद परगट होय।

'सुवा-बतीसी' सुनहु सुजान, निज-पद प्रगटत परम निधान ;
सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त, 'भैया'की विनती धर चित्त।३२
संवत् सत्रह त्रेपन माहिं, आश्विन पहले पक्ष कहाहिं ;
दशमी दसों दिशा परकाश, गुरु-संगतितैं शिवसुख भास।३४

ज्ञान-पच्चीसी

[महाकवि बनारसीदास-कृत भेद-विज्ञानके दोहे]

सुर-नर-तिरियग-योनिमें, नरक-निगोद भमंत; महामोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ।१। जैसें ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाय; तैसें कुकरमके उदय, धर्म-वचन न सुहाय ।२। लगै भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार; अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्म विचार ।३। जैसें पवन झकोरतैं, जलमें उठै तरंग; त्यों मनसा चंचल भई, परिगहके परसंग ।४। जहाँ पवन नहिं संचरै, तहाँ न जल-कल्लोल; त्यों सब परिगह त्यागतैं, मनसा होय अडोल ।५। ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चबाय; त्यों तुम ममतासों मढ़े, मगन विषय-सुख पाय ।६। नीम रसन परसै नहीं, निर्विष तन जब होय; मोह घटे ममता मिटै, विषय न वांछै कोय ।७। ज्यों सछिद्र नौका चढ़े, बूड़हि अन्ध अदेख; त्यों तुम भव-जलमें परे,

बिन विवेक धर भेख ।८। जहाँ अखंडित गुन लगे, खेवट शुद्ध विचार; आतम-रुचि-नौका चढ़े, पावहु भव-जल पार ।९। ज्यों अंकुस मानै नहीं, महामत्त गजराज; ज्यों मन तिसनामें फिरै, गिनै न काज अकाज ।१०। ज्यों नर दाव उपायकैं, गहि आनै गज साधि; त्यों या मन बस करनकों, निर्मल ध्यान समाधि ।११। तिमिर-रोगसों नैन ज्यों, लखै औरको और; त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्या-मतिकी दौर ।१२। ज्यों औषध अंजन किये, तिमिर-रोग मिट जाय; त्यों सतगुरु उपदेशतैं, संशय वेग विलाय ।१३। जैसें सब यादव जरे, द्वारावतिकी आगि; त्यों मायामें तुम परे, कहाँ जाहुगे भागि ।१४। दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निरग्रंथ; तजि माया समता गहो, यहै मुकतिको पन्थ ।१५। ज्यों कुधातुके फेंटसों घट-बढ़ कंचन कान्ति; पाप-पुण्य कर त्यों भये, मूढ़ातम बहु भाँति ।१६। कंचन

निज गुन नहिं तजै, हीन बानके होत ; घट-घट अन्तर आतमा, सहज-सुभाव उदोत ।१७। पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ; त्यों प्रगटै परमातमा, पुण्य-पाप-मल खोय ।१८। पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर-सोम छवि-छीन ; संगति पाय कु-साधुकी, सज्जन होय मलीन ।१९। निम्बादिक चन्दन करै, मलयाचलकी बास ; दुर्जननैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ।२०। जैसें ताल सदा भरै, जल आवै चहुँ ओर ; तैसें आस्रव-द्वारसों, कर्म-बन्धको जोर ।२१। ज्यों जल आवत मूंदिये, सूखै सरवर-पानि ; तैसें संवरके किये, कर्म-निर्जरा जानि ।२२। ज्यों बूटी-संयोगतैं, पारा मूर्छित होय ; त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतम-शक्ति समोय ।२३। मेलि खटाई माजिये, पारा परगट रूप ; शुक्लध्यान अभ्यासतैं, दर्शन-ज्ञान अनूप ।२४। कहि उपदेश 'बनारसी', चेतन अब कछु चेत । आप बुझावत आपको, उदय करनके हेत ।२५।

अध्यात्म-जकड़ी

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै ;
अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढ़ावै ।
सदगुरु तुमहिं पढ़ावै चित दै,
अरु तुमहू हो ज्ञानी ;
तबहू तुमहिं न क्यों हू आवै,
चेतन - तत्त्व - कहानी !
विषयनिकी चतुराई[1] कहिये,
को सरि करै तुम्हारी ;
बिन गुरु फुरत कुविद्या कैसें,
चेतन अचरज भारी !१।

चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले ;
विषय जु देखि रवाने[2], कहा जानि जिय फूले !
कहा जानि जिय फूले चेतन,
तुम तौ विधिना बाँचे[3] ;
सुद्ध सुभाव सहज सुख छोड़ जु
इन्द्रिय - सुख - रस राचे ।

'अध्यात्म-जकड़ी'=जो आत्मा या मनको अध्यात्म-रसमें जकड़ती है, उसे अध्यात्म-जकड़ी कहते हैं।

(१) चतुराई। (२) रमणीय=सुन्दर। (३) विधिना=कर्मों द्वारा; बाँचे=वञ्चित किये गये; अर्थात् कर्मोंने हमें वञ्चित कर रखा है।

भोजन, सेज, वेष, वर जुवती,
गीतादिक जु रवाने ;
भये सुवा भव-सेंवर-द्रुमके[1],
चेतन चतुर सयाने ।२।

मोह-महामद-मातें, वादि[2] अनादि गँवायो ;
अपने धरमनि घातैं, विषयनिसों मन लायो ।

विषयनिसों मन लाये तुम तो,
बाहिर सुन्दर दीठे ;
विष-फल परिहरि, शेष[3] कटुक है,
सेवत ही सुख मीठे ।
काम-भोग-भ्रम-भाव भुलाने,
रुचैं न सद्गुरु बातैं ;
हित-अनहित कछु समझत नाहीं,
मोह - महामद - मातैं ।३।

इंद्रिनको सुख सेयें, सुख लव दुख अनुमायो ;
स-विष सुभोजन जेयें[4], कब कौने सुख पायो !

---

(१) भव=जन्म-मरण, सेंवर-द्रुम=सेमरका पेड़, अर्थात् तोता जिस तरह सेमरके फलको आम समझकर उसकी आशामें फँसा रहता है, उस तरह हम जन्म-मरण-रूप संसारको सुख समझकर उसीमें फँसे रहे। (२) वादि=व्यर्थ। (३) शेष=अन्त, नतीजा। (४) जेयें=जीमनेसे, अर्थात् विष-युक्त स्वादिष्ट भोजन करके कब किसने सुख पाया है?

कब कौने सुख पायो चेतन,
ये सुख [1]दमैं स्वादै ;
फरस[2] दंति[3], रस मीन, गंध अलि[4],
रूप सलभ[5], मृग नादै[6]।
एक-एक इन्द्रिनिको यह दुख,
पाँचो तुमहिं बँधे ये ;
सावधान किन[7] होहु बंध हो,
इन्द्रिनिकौ सुख सेये ।४।

इह संसार मँझारे, सुर-नर वर पद पाये ;
स्वकृत-करम अनुसारे, सुख सेये मन भाये ।

सुख सेये मन भाये तुम चिर,
इन्द्रिनि रचि सुख माने ;
तबहु त्रिपति भई नहिं कबहूं,
अरु तिसना अधिकाने ।
अब रतनत्रय-पथ धरि शिवपुर
जाहु न, होहु सुखारे ;
'रूपचन्द' कत दुख देखत हो,
इह संसार मँझारे ।५।

(१) दमैं=दमन करनेसे ; स्वादै=स्वाद मिलता है ; अर्थात् इन सबोंके त्यागनेसे ही सच्चा सुख मिलता है । (२) फरस=स्पर्श-इन्द्रिय । (३) दन्ति=हाथी । (४) अलि=भौंरा । (५) सलभ=पतंगा । (६) शब्द=संगीत । इनसे प्राण गँवाये । (७) क्यों ।

[२]

बादि अनादि गँवायो ;
विधि-बस बहु दुख पायो ।

विधि-बस बहु दुख पायो, चेतन,
सो तैं सुखकर मान्यो ;
रह्यो मूढ़ परजय-रत सन्तत,
अपनो पद न पिछान्यो !
मिथ्या-दरसन-ज्ञान-चरन बस,
चहुँगति चिर भ्रम आयो ;
स्व-पर-विवेक विना भ्रम भूल्यो,
बादि अनादि गँवायो ।१।

तेरो पद यह नाहीं ;
भ्रमत चतुरगति माहीं !

भ्रमत चतुरगति माहिं जु भटकत
निज-पद छोड़ि अयाने ;
पर-पद अपद विपय-रति मानी,
ममता - भरम भुलाने ।

(१) व्यर्थ ही । (२) अयाने=अज्ञानी ।

सहज सुभाव विमुख है चेतन,
चलत करमकी[1] छाँहीं ;
अपने चित्त विचारि न देखो,
तेरो पद यह नाहीं ।२।
तैं करमनिनैं दीनो[2] ;
तिन सरवस हर लीनो ।
तिन सरवस हर लीनो तेरो,
तोहि अबल करि पायो[3] ;
किंचित इन्द्रिनको सुख-रस दे,
तोहि मूढ़ बहरायो[4] ।
रंक भयो बिललात फिरतु है,
विषय-स्वादको लीनो ;
अखय अनंत सहज सुख बिसरो,
तैं करमनिने दीनो ।३।

---

(१) जिस तरह बैलगाडीकी छायाके नीचे चलनेवाला कुत्ता अपनेको गाड़ीका चलानेवाला समझकर चलता रहता है, उसी तरह यह जीव शुभ-अशुभ कर्मोंको छायाके नीचे चलनेके लिए वाध्य होनेपर भी अपनेको सासारिक कामोंका कर्ता समझता है। (२) कर्मोंने तुझे दोन बना दिया है। (३) तुझे कमजोर समझ रखा है, पर वास्तवमें तू कमजोर नहीं है। (४) बहरायो=बहला दिया है ; भुला दिया है।

रहौ कहा हिय-हारी ;
अपनो पदहिं सँभारी !
अपनो पदहिं सँभारि महाबल,
वैरिन इनहिं न दीजै ;
मान महत गुन-शील जाय जहँ,
सो कबहूं नहिं कीजै।
सूर सुजान, जगतको नायक,
को पटतरै तिहारी !
भेद-ज्ञान करि करमनि जीतहु,
रहौ कहा हिय-हारी !४।

रतन-त्रय आराधी ;
परिहर सकल उपाधी।
परिहर सकल उपाधि, सयाने,
पर-परनतिहिं निवारै ;
दरसन-ज्ञान-चरन परिनत है,
आतम-तत्त्व विचारै।
देखन दुःख कहा भव भीतर,
धरि अब सहज समाधी ;
'रूपचंद' शिवपुर न सिधारहि,
रतन-त्रय आराधी !५।

बारह-भावना

[कविवर मंगतराय-कृत]

वन्दूं श्री अरहन्त-पद, वीतराग विज्ञान ;
बरनूं बारह-भावना, जगजीवन-हित जान ।

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा ? कहाँ गये वह राम रु लछ्मन, जिन रावन मारा ? कहाँ कृष्ण, रुक्मिणि, सतभामा, अरु सम्पति सगरी ? कहाँ गये वह रंग-महल अरु, सुवरनकी नगरी ।१। नहीं रहे वे लोभी कौरव, जूझ मरे रनमें । गये राज तज पांडव वनको अगिन लगी तनमें । मोह-नींदसे उठ रे चेतन, तुझे जगावनको । हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह-भावनको ।२।

१—अथिर-भावना

सूरज चाँद छिपै-निकसै, ऋतु, फिर-फिर कर आवै । प्यारी आयू ऐसी बीतै, पता नहीं पावै ! पर्वत-पतित नदी सरिता जल, बहकर नहिं हटता । स्वाँस चलत

यों घटै, काठ ज्यों आरेसों कटता ।३।
ओस-बूंद ज्यों गले धूपमें, वा अंजुलि
पानी । छिन-छिन यौवन छीन होत है,
क्या समझै प्रानी । इन्द्रजाल आकाश-
नगर सम जग - सम्पति सारी । अथिर
रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी ।५।

२—अशरण-भावना

कालसिंहने मृग-चेतनको घेरा भव-वनमें।
नहीं बचावनहारा कोई, यों समझो मनमें।.
मन्त्र-यन्त्र, सेना, धन-सम्पति, राज-पाट
छूटै। वश नहिं चलता, काल लुटेरा काय
नगरि लूटै।४। चक्र-रतन, हलधर-सा भाई
काम नहीं आया। एक तीरके लगत
कृष्णकी विनसि गई काया। देव धर्म
गुरु शरण जगतमें, और नहीं कोई।
भ्रमसे फिरै भटकता चेतन, यूँही उमर
खोई ।६।

३—संसार-भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोगसे सदा दुखी
रहता। द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-

परिवर्तन सहता। छेदन-भेदन, नरक पशूगति, बध-बंधन सहना। राग-उदयसे दुख सुरगतिमें, कहाँ सुखी रहना। भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली! कुतवाली दिन-चार, वही फिर, खुरपा अरु जाली। मानुषजन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा। पंचम-गति सुख मिलै शुभाशुभको मेटो लेखा।८।

४—एकत्व-भावना

जनमै मरै अकेला चेतन, सुख-दुखका भोगी। और किसीका क्या, इक दिन यह, देह जुदी होगी। कमला चलत न पैंड, जाय मरघट तक परिवारा। अपने-अपने सुखको रोवैं, पिता पुत्र दारा।९। ज्यों मेलेमें पन्थीजन मिलि नेह फिरें धरते। ज्यों तरवरपै रैन-बसेरा पंछी आ करते। कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारै। जाय अकेला हंस, संगमें कोइ न पर मारै।१०।

५—भिन्नत्व भावना

मोह-रूप मृगतृषणा-जलमें, मिथ्या जल चमकै। मृग-चेतन नित भ्रममें उठ-उठ, दौड़ै थक-थककै। जल नहिं पावै, प्रान गमावै, भटक-भटक मरता। वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।११। तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़, तू ज्ञानी। मिले अनादि यतनतैं विछुड़ै, ज्यों पय अरु पानी। रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद-ज्ञान करना। जौलों पौरुष थकै न तौलों, उद्यमसों चरना।१२।

६—अशुचि-भावना

तू नित पोखै, यह सूखै ज्यों, धोवै त्यों मैली। निश-दिन करै उपाय देहका, रोग-दशा फैली। मात-पिता रज-वीरज मिलकर बनी देह तेरी। मांस हाड़ नस लहू राधकी, प्रगट व्याधि घेरी।१३। काना पौंडा पड़ा हाथ यह, चूसै तौ रोवै। फलै अनन्त जु धर्म-ध्यानकी, भूमिविषैं बोवै।

केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी। देह परसते होय अपावन, निस-दिन मल जारी ।१४।

७—आस्रव-भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव करमनको। दरवित जीव प्रदेश गहै जब, पुदगल भरमनको। भावित आस्रव-भाव शुभाशुभ, निश-दिन चेतनको। पाप-पुण्यके दोनों करता, कारन बन्धनको।१६। पन मिथ्यात योग पन्द्रह द्वादश अविरत जानो। पंच रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो। मोह-भावकी ममता टारै, पर परणत खोते। करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।

८—संवर-भावना

ज्यों मोरीमें डाट लगावै, तब जल रुक जाता। त्यों आस्रवको रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता। पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मनको। दस विध धर्म, परीषह बाइस, बारह भावनको।१८। यह

सब भाव सतावन मिलकर आस्रवको खोते। सुपन-दशासे जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते! भाव शुभाशुभ-रहित शुद्ध भावन संवर पावै। डाँट लगत यह नाव पड़ी मझधार, पार जावै।

९—निर्जरा भावना

ज्यों सरवर-जल रुका सूखता तपन पड़ै भारी। संवर रोकै कर्म, निर्जरा है सोखन-हारी। उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम-डाली। दूजी है अविपाक, पकावै पाल-विषै माली। पहली सबके होय, नहीं कुछ सरै काम तेरा। दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत-फेरा। संवर-सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकति-रानी। इस दुल्हिनकी यही सहेली, जानै सब ज्ञानी।

१०—लोक-भावना

लोक-अलोक अकाश माहिं थिर, निराधार जानो। पुरुष-रूप कर-कटी भये षट द्रव्यनसों मानो। इसका कोइ न करना-

हरता, अमिट अनादी है। जीव रु पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है।२२। पाप-पुन्यसों जीव जगतमें, नित सुख-दुख भरता। अपनी करनी आप भरै, सिर औरनके धरता। मोह-कर्मको नाश, मेटकर सब जगकी आसा। निज-पदमें थिर होय, लोकके सीस करो बासा।

११—बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोदसे थावर अरु त्रस-गति पानी। नर-कायाको सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी। उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ श्रावककुल पाना। दुर्लभ सम्यक, दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना। दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षाका धरना। दुर्लभ मुनिवरको व्रत पालन, शुद्ध भाव करना। दुर्लभ-से-दुर्लभ है चेतन, बोधि-ज्ञान पाना। पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भवमें आना।

१२—धर्म-भावना

षट दरशन अरु बौद्ध रु नास्तिकने जगको लूटा। मूसा ईसा और मुहम्मदका

मजहब झूटा। हो सुछंद सब पाप करै, सिर करनाके लावै। कोई छिनक कोई करतासे जगमें भटकावै। वीतराग सर्वज्ञ दोष-बिन श्रीजिनकी वानी। सप्त तत्त्वका वर्णन जामें, सबको सुखदानी। इनका चिंतवन बार-बार कर श्रद्धा उर धरना। 'मंगत' इसी जतनतैं इक दिन, भव-सागर तरना।

हम तो कबहूँ न 'निज' गुण भाये!

तन निज मान, जान तन दुख-सुखमें बिलखे हरखाये।
तनको गरन, मरन लखि तनको, धरन मान हम जाये!
या भ्रम-भौंर परे भव-जल चिर, चहुँ गति विपति लहाये।
दरश-बोध-व्रत-सुधा न चाख्यो, विविध विषय-विष खाये;
सुगुरु दयाल सीख दई पुनि-पुनि, सुनि-सुनि उर नहिं लाये।
बहिरातमता तजी न, अन्तर-दृष्टि न ह्वै निज ध्याये;
धाम-काम-धन-रामाकी नित, आश-हुताश जलाये।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी, सब सुखमय मुनि गाये;
'दौल' चिदानंद स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये।

वज्रनाभि चक्रवर्तीकी

वैराग्य-भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं;
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं।

(जोगीरासा या नरेंद्रछंद)

इह विध राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशालो। सुख-सागरमें रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो। एक दिवस शुभ कर्म-सँजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे। देखि सिरीगुरुके पद-पंकज, लोचन-अलि आनंदे।२। तीन प्रदच्छिन दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी। साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरननमें दिठि दीनी। गुरु उपदेश्यो धर्म-शिरोमणि, सुन राजा बैरागे। राज-रमा-वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे।३। मुनि-सूरज कथनी-किरनावलि लगत भरम-बुधि भागी। भव-तन भोग-स्वरूप विचारो, परम धरम अनुरागी। इह संसार महावन

भीतर, भ्रमते ओर न आवै। जामन मरन जरा दौं दाझै, जीव महादुख पावै। कबहूं जाय नरक-थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी। कबहूं पशु-परजाय धरै तहँ, बध-बंधन भयकारी। सुरगतिमें पर संपति देखे राग उदय दुख होई। मानुष-योनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई ।५। कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट सँयोगी। कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तनके रोगी। किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई। किस ही के दुख बाहिर दीखें, किस ही उर दुचिताई ।६। कोई पुत्र विना नित झूरै, होय मरै, तब रोवै। खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै! पुन्य उदय जिनके, तिनके भी नाहिं सदा सुख साता। यह जगवास जथारथ देखे सब दीखै दुखदाता ।७। जो संसारविषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागैं। काहेको शिव-साधन करते, संजमसों अनुरागैं।

देह अपावन अथिर घिनावन, यामैं सार न कोई। सागरके जलसों शुचि कीजै, तौ भी शुद्ध न होई ।८। सात कुधातु भरी मल-मूरत चाम लपेटी सोहै। अंतर देखत या सम जगमें अवर अपावन को है। नव मलद्वार स्रवैं निसि-वासर, नाम लिये घिन आवै। व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ।९। पोषत तो दुख दोष करै अति, शोषत सुख उपजावै; दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै। राचन जोग स्वरूप न याको, विर-चन जोग सही है। यह तन पाय महातप कीजै यामैं सार सही है ।१०। भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके। बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके। वज्र-अगिनि विष-से, विषधर-से, ये अधिके दुखदाई। धर्म-रतनके चोर चपल अति, दुर्गतिपन्थ सहाई ।११। मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै। ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब

कंचन मानै। ज्यों-ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मन-वांछित जन पावै। तृष्णा-नागिन त्यों-त्यों डंकै, लहर जहरकी आवै।१२। मैं चक्रीपद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे। तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे। राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढ़ावनहारा। वेश्या-सम लछमी अति चंचल, याका क्या पतियारा।१३। मोहमहारिपु बैर विचार्यो, जग-जिय संकट डारे। घर-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे। सम्यकदर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी। ये ही सार, असार और सब, यह चक्री चित धारी।१४। छोड़े चौदह रत्न नवोनिधि अरु छोड़े सँग-साथी। कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी। इत्यादिक सम्पति बहुतेरी जीरन तृण सम त्यागी। नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बड़भागी।१५। होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषण वसन उतारे। श्रीगुरु चरण

धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे। धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी। ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी।१६।

परिगह-पोट उतार सब, लीनों चारित-पन्थ;
निज-स्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ।

'जिन पोषी, ते भये सदोषी'

मत कीजौ जी यारी, घिन-गेह देह जड़ जानके।टेक।
मात-तात रज-वीरजसों यह उपजी मल-फुलवारी;
अस्थि-माल-पल-नसा-जालकी लाल-लाल जल-क्यारी।१
कर्म-कुरंग-थली पुतली यह मूत्र-पुरीष भँडारी;
चर्म-मढ़ी रिपु-कर्म गढ़ी, धन-धर्म चुरावनहारी।२
जे-जे पावन वस्तु जगतमें, ते इन सर्व बिगारी;
स्वेद-मेद-कफ-क्लेदमयी बहु, मद-गद-व्याल-पिटारी।३
जा संयोग रोग-भव तौलौं, जा वियोग शिवकारी;
बुध यासों न ममत्व करैं, यह मूढ़-मतिनको प्यारी।४
जिन पोषी, ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी;
जिन तप ठान ध्यानकर शोषी, तिन परनी शिवनारी।५
सुर-धनु शरद-जलद जल-बुदबुद, त्यों झट विनशनहारी;
यातैं भिन्न जान निज चेतन, 'दौल' होहु शमधारी।६
घिन गेह देह जड़ जानके, मत कीजौ जी यारी।

बारह-भावना

[कविवर भूधरदास-कृत]

[१]

राजा, राणा, छत्रपति, हाथिनके असवार
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार

[२]

दल-बल, देई-देवता, मात-पिता परिवार
मरती बिरियाँ जीवको, कोऊ न राखनहार

[३]

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान
कहूँ न सुख संसारमें, सब जग देखो छान

[४]

आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय
यूँ कबहूँ इस जीवको, साथी-सगा न कोय

[५]

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय
घर-संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन-लोय

[६]

दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह
भीतर या सम जगतमें, अवर नहीं घिन-गेह

[७]

मोह - नींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा
कर्म-चोर चहुँओर, सरवस लूटैं, सुध नहीं
सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमैं
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं

[८]

ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर

[९]

पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार

[१०]

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान

[११]

धन-कन-कंचन राज-सुख, सबहि सुलभकर जान
दुरलभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान

[१२]

जाचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन
बिन जाचे बिन चिंतये, धर्म सकल सुखदैन

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार

[स्वामी समन्तभद्राचार्य के मूल ग्रन्थका
कवि गिरिधर शर्मा-कृत हिन्दी-पद्यानुवाद]

पहला परिच्छेद

सकल कर्म-मल जिनने धोये
हैं वे वर्द्धमान भगवान,
लोकालोक भासते जिसमें
ऐसा दर्पण जिनका ज्ञान;
बड़े चावसे भक्ति-भावसे
नमस्कार कर बारम्बार,
उनके श्रीचरणोंमें प्रणमूँ
सुख पाऊँ, हर विघ्न-विकार।१।

धर्मका लक्षण

जो संसार दुःखसे सारे
जीवोंको सु बचाता है,
सर्वोत्तम सुखमें पुनि उनको
भलीभाँति पहुँचाता है;
उसी कर्मके काटनहारे
श्रेष्ठ धर्मको कहता हूँ,
श्री समन्त-भद्रार्य वर्यका
भाव बताना चहता हूँ।२।

गणधरादि धर्मेश्वर कहते
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,
सम्यक्चारित धर्म रम्य है
सुखदायक सब भाँति निदान;
इनसे उलटे मिथ्या हैं सब
दर्शन ज्ञान और चारित्र,
भव कारण हैं, भय कारण हैं,
दुख कारण हैं, मेरे मित्र ।३।

सम्यग्दर्शनका लक्षण

आठ अंग-युत, तीन मूढ़ता-
रहित, अमद, जो हो श्रद्धान,
सच्चे देव-शास्त्र-गुरुपर दृढ़,
सम्यग्दर्शन उसको जान;
सच्चे देव-शास्त्र-गुरुका मैं
लक्षण यहाँ बताता हूँ,
तीन मूढ़ता, आठ अंग, मद,
सबका भेद बताता हूँ ।४।

आप्त या देवका स्वरूप

जो सर्वज्ञ शास्त्रका स्वामी,
जिसमें नहीं दोषका लेश,
वही आप्त है, वही आप्त है,
वही आप्त है तीर्थ-जिनेश;

जिसके भीतर इन बातोंका
समावेश नहिं हो सकता,
नहीं आप्त वह हो सकता है,
सत्य देव नहिं हो सकता ।५।
भूख प्यास बीमारि बुढ़ापा
जन्म मरण भय राग द्वेष,
गर्व मोह चिन्ता मद अचरज
निद्रा अरति खेद औ स्वेद ;
दोष अठारह ये माने हैं,
हों ये जिनमें जरा नहीं,
आप्त वही है, देव वही है,
नाथ वही है, और नहीं ।६।
सर्वोत्तम पदपर जो स्थित हो,
परम ज्योति हो, हो निर्मल,
वीतराग हो, महाकृती हो,
हो सर्वज्ञ सदा निश्चल ;
आदिरहित हो, अन्तरहित हो,
मध्यरहित हो महिमावान,
सब जीवोंका होय हितैषी,
हितोपदेशी वही सुजान ।७।

बिना रागके बिना स्वार्थके
सत्य - मार्ग वे बतलाते ,
सुन-सुन जिनको सत्पुरुषोंके
हृदय प्रफुल्लित हो जाते ;
उस्तादों के कर - स्पर्श से
जब मृदंग ध्वनि करता है ,
नहीं किसीसे कुछ चहता है,
रसिकोंके मन हरता है ।८।

शास्त्रका लक्षण

जो जीवोंका हितकारी हो,
जिसका हो न कभी खंडन ,
जो न प्रमाणोंसे विरुद्ध हो.
करता होय कुपथ-खंडन ;
वस्तु-रूपको भलीभाँतिसे
बतलाता हो जो शुचितर ,
कहा आप्तका शास्त्र वही है,
शास्त्र वही है सुन्दरतर ।९।

गुरुका लक्षण

विषय छोड़कर निरारम्भ हो
नहीं परिग्रह रक्खे पास ,
ज्ञान ध्यान तपमें रत होकर
सब प्रकारकी छोड़ें आस ;

ऐसे ज्ञान-ध्यान-तप-भूषित
होते जो साँचे मुनिवर,
वही सुगुरु हैं, वही सुगुरु हैं,
वही सुगुरु हैं उज्ज्वलतर ।१०।

सम्यक्त्वके आठ अंग—१ नि शंकित-अंग

तत्त्व यही है, ऐसा ही है,
नहीं और, नहिं और प्रकार,
जिनकी सन्मारगमें रुचि हो,
ऐसी मानो खड्गकी धार;
है सम्यक्त्व-अंग यह पहला,
निःशंकित है इसका नाम,
इसके धारण करनेसे ही
अंजन-चोर हुआ सुखधाम ।११।

२ नि·कांक्षित-अंग

भाँति-भाँतिके कष्ट सहे भी
जिसका मिलना कर्माधीन,
जिसका उदय विविधि दुखयुत है,
जो है पाप-बीज अति हीन;
जो है अन्तसहित लौकिक सुख
कभी चाहना नहिं उसको,
निःकांक्षित यह अंग दूसरा,
धारा ऽनंतमती इसको ।१२।

३. निर्विचिकित्सित-अंग

रत्नत्रयसे जो पवित्र हो
स्वाभाविक अपवित्र शरीर,
उसकी ग्लानि कभी नहिं करना,
रखना गुणपर प्रीति सधीर;
निर्विचिकित्सित अंग तीसरा,
यह सुजनोंका प्यारा है,
पहले उद्दायन नरपतिने
नीके इसको धारा है ।१३।

४ अमूढदृष्टि-अंग

दुखकारक हैं कुपथ कुपंथी,
इन्हें मानना नहिं मनसे,
करना नहिं सम्पर्क सस्तुती,
यश गाना नहिं वचनोंसे;
चौथा अंग अमूढदृष्टि यह,
जगमें अतिशय सुखकारी
इसको धार रेवती रानी
ख्यात हुई जगमें भारी ।१४।

५ उपगूहन-अंग

स्वयं शुद्ध जो सत्य मार्ग है
उत्तम सुख देनेवाला,
अज्ञानी असमर्थ मनुज-कृत
उसकी हो निन्दामाला;
उसे तोड़कर दूर फेंकना,
उपगूहन है पंचम अंग,
इसे पाल निर्मल यश पाया
सेठ जिनेन्द्रभक्त सुखसंग।१५

६ स्थितीकरण-अंग

सद्दर्शन से सदाचरण से
विचलित होते हों जो जन,
धर्म-प्रेमवश उन्हें करे फिर
सुस्थिर, देकर तन-मन-धन;
स्थितीकरण नामक यह छट्ठा
अंग धर्म-द्योतक प्रियवर,
वारिषेण श्रेणिकका बेटा
ख्यात हुआ चलकर इसपर।१६

७ वात्सल्य-अंग

कपट-रहित हो श्रेष्ठ भावसे
यथायोग्य आदर सत्कार
करना अपने सधर्मियोंका
सप्तमांग वात्सल्य विचार;
इसे पालकर प्रसिद्धि पाई
मुनिवर श्रीयुत विष्णुकुमार,
जिनका यश शास्त्रोंके भीतर
गाया निर्मल अपरंपार ।१७।

८ प्रभावना-अंग

जैसे होवे वैसे भाई,
दूर हटा जगका अज्ञान,
कर प्रकाश, कर दे विनाश तम,
फैला दे शुचि सच्चा ज्ञान;
तन-मन-धन सर्वस्व भले ही
लेवा इसमें लग जावे.
वज्रकुमार मुनीन्द्र सदृश तू
सद्य प्रभावना कर पावे ।१८।

अष्टांग सम्यग्दर्शनकी उपयोगिता

सम्यग्दर्शन सुखकारी है,
भव-सन्तति इससे मिटती,
अंग-हीन यदि हो, इसमें तो
शक्ति नहीं उतनी रहती;
विषकी व्यथा मिटा दे, ऐसी
शक्ति मंत्रमें है प्रियवर,
अक्षर - माला - हीन हुए से
मंत्र नहीं रहता सुखकर ।१९।

तीन मूढता—१ लोक-मूढता

गंगादिक नदियोंमें न्हाये
होगा मुझको पुण्य महान,
ढेर किये पत्थर - रेतीके
हो जावेगा तत्त्वज्ञान;
गिरिसे गिरे शुद्ध होऊँगा,
जले आगमें पावन-तर,
ऐसे मनमें विचार रखना
लोक-मूढ़ता है प्रियवर ।२०।

२ देव-मूढ़ता

दई - देवताकी पूजा कर
मन चाहे फल पाऊँगा,
मेरे होंगे सिद्ध मनोरथ,
लाभ अनेक उठाऊँगा;
ऐसी आशाएँ मनमें रख
जो जन पूजा करता है,
राग - द्वेष भरे देवोंकी
देव - मूढ़ता धरता है।२१।

३ गुरु-मूढ़ता

नहीं छोड़ते गाँठ-परिग्रह,
आरंभको नहिं तजते हैं,
भव - चक्रोंके भ्रमनेवाले,
हिंसाको ही भजते हैं;
साधु-सन्त कहलाते तिसपर
देना इन्हें मान सत्कार,
है पाखण्ड-मूढ़ता प्यारो,
छोड़ो इसको, करो विचार।२२।

आठ मद

ज्ञान जाति कुल पूजा ताकत
ऋद्धि तपस्या और शरीर,
इन आठोंका आश्रय करके
है घमंड करना मद, वीर;
मदमें आ निज-धर्मिजनोंका
जो जन करता है अपमान,
वह सुधर्मके मान-भंगका
कारण होता है अज्ञान।२३।

पापास्त्रव और सम्पदा

अगर पापका हो निरोध तो
और सम्पदासे क्या काम?
अगर पापका आश्रय हो तो
और सम्पदासे क्या काम?
मित्रो, यदि पहला होगा तो
दुखका उदय नहीं होगा,
यदि दुसरा होगा, तो सम्पद्
होने पर भी दुख होगा।२४।

सम्यग्दर्शनकी महिमा

सम्यग्दर्शनकी शुभ सम्पद्
होती है जिनके भीतर,
मातंगज हो, कोई भी हो,
महामान्य हैं वे बुधवर;

गुदड़ीके वे लाल सुहाने,
ढकी भस्मकी है आगी,
सम्यग्दर्शनकी महिमासे
कहें देव ये बड़भागी ।२५।
सुन्दर धर्माचरण कियेसे
कुत्ता भी सुर हो जाता,
पापाचरण कियेसे त्यों ही
श्वान-योनि सुर भी पाता;
ऐसी कोई नहीं सम्पदा,
जो न धर्मसे मिलती है,
सब मिलती है, सब मिलती है,
सब मिलती है, मिलती है ।२६।
जिनके दर्शन किये चित्तमें
उदय नहीं होवे समभाव,
जिनके पढ़ने-सुननेसे नहिं
उच्च चरित हो, हो न सुभाव;
जिन्हें मान आदर्श चलेसे
सत्यमार्ग भूले पड़ जायँ,
ऐसे खोटे देव-शास्त्र-गुरु
शुद्धदृष्टिसे विनय न पायँ ।२७।

ज्ञान शक्ति है, ज्ञान बड़ा है,
कोई वस्तु न ज्ञान समान ,
त्यों चारित्र बड़ा गुणधारी,
सब सुखकारी श्रेष्ठ महान ;
पर मित्रो, दर्शनकी महिमा
इन सबसे बढ़कर न्यारी,
मोक्ष-मार्गमें इसकी पदवी
कर्णधार जैसी भारी ।२८।
सम्यग्दर्शन नहिं होवे तो
ज्ञान-चरित्र कभी शुभतर
फलदाता नहिं हो सकते हैं,
जैसे बीज विना तरुवर ;
सम्यग्दर्शन-विना ज्ञानको
मित्रो, समझो मिथ्याज्ञान ,
वैसे ही चारित्र समझ लो
मिथ्याचरित सकल दुखखान ।२९।
मोह-रहित जो है गृहस्थ भी
मोक्ष-मार्ग अनुगामी है ,
हो अनगार न मोह तजा तो
वह कुपन्थका गामी है ;

मुनि होकर भी मोह न छोड़ा,
ऐसे मुनिसे तो प्रियवर,
निर्मोही हो गृहस्थ रहना।
है अच्छा उत्तम बहतर।३०।
भूत भविष्यत वर्तमान ये,
कहलाते हैं तीनों काल,
देव, नारकी और मनुज ये
तीनों जगमें महाविशाल;
तीनों काल त्रिजगमें नहिं है
सुखकारी सम्यक्त्व समान,
त्यों ही नहिं मिथ्यात्व सदृश है
दुखदायक, लीजे सच मान।३१।
मित्रो, जो सम्यग्दर्शनसे
शुद्ध-दृष्टि हो जाते हैं,
नारक तिर्यक षंड-स्त्री-पन
कभी नहीं वे पाते हैं;
व्रत-विहीन वे होवें तो भी
नीच कुलोंमें नहिं होते,
नहिं होते अल्पायु दरिद्री
विकृत-देह भी नहिं होते।३२।

विद्या वीर्य विजय वैभव वय
ओज तेज यश वे पाते,
अर्थ-सिद्धि कुल-वृद्धि महाकुल
पाकर सज्जन कहलाते;
अष्ट सिद्धि नव निधि होती हैं
उनके चरणोंकी दासी,
रत्नोंके वे स्वामी होते
नृपगणके मस्तकवासी ।३३।

पाके तत्त्व-ज्ञान मनोरम
वे महान हैं हो जाते,
सुरपति नरपति धरणीपति औ
गणधरसे पूजा पाते;
धर्मचक्रके धारक अनुपम
मित्रो. तीर्थंकर होते,
तीनों लोकोंके जीवोंके
शरणभूत सच्चे होते ।३४।

वाधा शंका रोग शोक भय
जरा जहाँ है जरा नहीं,
जिसमें विद्या-सुख है अनुपम
जिसका क्षय है कभी नहीं;

ऐसा उत्तम निर्मलतर है
शिवपद अथवा मोक्ष-महान,
उसको पाते हैं अवश्य वे
जो जन सम्यग्दर्शनवान ।३५।

है देवेन्द्र-चक्रकी महिमा
कही नहीं जो जाती है,
सार्वभौमकी पदवीको सिर
महिपावली झुकाती है;
सब पद जिसके नीचे ऐसा
तीर्थंकर पद है प्रियवर,
पा इन सबको शिवपद पाते
भव्य भक्त प्रभुको भजकर ।३६।

दूसरा परिच्छेद

सम्यग्ज्ञानका लक्षण

वस्तु-रूपको जो बतलाये
नीके न्यूनाधिकता-हीन,
ठीक-ठीक जैसेका तैसा
अविपरीत सन्देह-विहीन;
गणधरादि आगमके ज्ञाता
कहते इसको सम्यग्ज्ञान,
इसको प्राप्त करानेवाले
कहे चार अनुयोग महान ।३७।

प्रथमानुयोग

धर्म-अर्थ त्यों काम-मोक्षका
जिसमें किया जाय वर्णन ,
पुण्य-कथा हो, चरित-गीति हो,
हो पुराणका पूर्ण कथन ;
रतन-त्रय औ धर्म-ध्यानका
जो अनुपम हो महानिधान ,
कहलाता प्रथमानुयोग है,
यों कहता है सम्यग्ज्ञान ।३८।

करणानुयोग

लोकालोक-विभाग बतावे,
युग-परिवर्तन बतलाता ,
वैसे ही चारों गतियोंको
दर्पण-सम है दिखलाता ;
है उत्तम करणानुयोग यह,
कहता है यों सम्यग्ज्ञान ,
इसे जाननेसे मानव-कुल
हो जाता है बहुत सुजान ।३९।

चरणानुयोग

गृहस्थियोंका, अनगारोंका
जिससे चारित हो उत्पन्न ,
बढ़े और रक्षा भी पावे,
है चरणानुयोग प्रतिपन्न ;

मित्रो, इसका किये आचरण
चरित-गठन हो जाता है,
करते हुए समुन्नति अपनी
जीव महासुख पाता है।४०।

द्रव्यानुयोग

जीव-तत्त्वका स्वरूप ऐसा,
ऐसा है अजीवका तत्त्व,
पाप-पुण्यका यह स्वरूप है
बन्ध-मोक्ष हैं ऐसे तत्त्व;
इन सबको द्रव्यानुयोगका
दीप भली विधि दिखलाता,
जो श्रुत-विद्याके प्रकाशको
जहाँ-तहाँपर फैलाता।४१।

तीसरा परिच्छेद

सम्यक्चारित्र

मोह-तिमिरके दूर हुए से
सम्यग्दर्शन पाता है,
उसको पाकर साधु समकिती
श्रेष्ठ ज्ञान उपजाता है;
फिर धारण करता है शुचितर
सुखकारी सम्यक्चारित्र,
रहे राग ज्यों नहीं पास कुछ
और द्वेष नस जावे मित्र।४२।

राग - द्वेषके नस जानेसे
नहीं पाप ये रहते पाँच ,
हिंसा, मिथ्या, चोरी, मैथुन
और परिग्रह लीजे जाँच ;
इन सबसे विरक्त हो जाना
सम्यग्ज्ञानीका चारित्र ,
सकल विकलके भेद-भावसे
धरें इसे मुनि गृही पवित्र ।४३।

बारह प्रकारका विकल चारित्र

बारह भेद-रूप चारित है
गृही जनोंका तीन प्रकार ,
पाँच 'अणुव्रत', तीन 'गुणव्रत'
और भले 'शिक्षाव्रत' चार ;
क्रमसे सभी कहो, पर पहले
पाँच 'अणुव्रत' बतला दो ,
उनका पालन करना सारे
सागारोंको सिखला दो ।४४।

पाँच अणु-व्रत

हिंसा मिथ्या चोरी मैथुन
और परिग्रह जो हैं पाप ,
स्थूल रूपसे इन्हें छोड़ना
कहा 'अणुव्रत' प्रभुने आप ;

निरतिचार इनको पालन कर
पाते हैं मानव सुर-लोक,
वहाँ अष्टगुण अवधिज्ञान त्यों
दिव्य देह मिलते हर शोक।४५।

अहिंसा

तीन योग औ तीन करणसे
त्रस जीवोंका वध तजना,
कहा 'अहिंसाणुव्रत' जाता.
इसको नित पालन करना;
इसी अहिंसाणुव्रत के हैं
कहलाते पंचातीचार,
छेदन, भेदन, भोज्य-निवारण,
पीड़न, बहुत लादना भार।४६।
इसी अणुव्रतके पालनसे
जाति-पाँतिका था चंडाल,
तो भी सब प्रकार सुख पाया
कीर्तिमान होकर यमपाल;
नहीं पालनेसे इस व्रतके
हिंसा-रत हो सेठानी,
हुई धनश्री ऐसी. जिसकी
दुर्गति नहिं जाती जानी।४७।

असत्य

बोले झूठ न झूठ बुलावे,
कहे न सच भी हितकारी,
स्थूल झूठसे विरक्त होवे
है सत्याणुव्रत-धारी;
निन्दा करना, धरोऽर हरना,
कूटलेख लिखना, परिवाद,
गुप्त बातको जाहिर करना,
ये इसके अतिचार प्रमाद ।४८।
इस व्रतके पालन करनेसे
पूज्य सेठ धनदेव हुआ,
नहीं पाल मिथ्या-रत होकर
सत्यघोष त्यों दुखी मुआ;
मिथ्या वाणी ऐसी ही है,
सब जगको संकटदाई,
इसे हटाओ, नहीं लड़ाओ,
समझाओ सबको भाई ।४९।

अचौर्य

गिरा पड़ा भूला रक्खा त्यों
विना दिया परका धन सार,
लेना नहीं, न देना परको,
है अचौर्य; इसके अतिचार—

माल चौर्यका लेना, चोरी
ढँग बतलाना, छल करना,
माल मेलमें, नाप-तौलमें
भंग राज-विधिका करना।८०।

इस व्रतको पालन करनेसे
वारिषेण जगमें भाया,
नहीं पालनेसे दुख-बादल
खूब तापसीपर छाया;
जो मनुष्य इस व्रतको पाले
नहीं जगतमें क्यों भावे,
क्यों नहिं उसकी शोभा छावे
क्यों न जगत सब जस गावे।८१

ब्रह्मचर्य

पाप-भीरु हो पर-दारासे
नहीं गमन जो करता है,
तथा औरको इस कुकर्ममें
कभी प्रवृत्त न करता है;
ब्रह्मचर्य व्रत है यह सुन्दर
पाँच इसीके हैं अतिचार,
इन्हें भलीविध अपने जीमें
मित्रो, लीजे खूब विचार।८२।

भंड वचन कहना, निशि-वासर
अति तृष्णा स्त्रीमें रखना,

व्यभिचारिणी स्त्रियोंमें जाना
औ अनंग-क्रीड़ा करना ;
औरोंकी शादी करवाना
इन्हें छोड़कर व्रत पाला,
वणिक्-सुता नीलीने नीके
कोतवालने नहिं पाला ।५३।

परिग्रह-परिमाण

आवश्यक धन-धान्यादिकका
अपने मनमें कर परिमाण,
उससे आगे नहीं चाहना
सो है व्रत इच्छा-परिमाण ;
अति वाहन, अति संग्रह, विस्मय,
लोभ, लादना अतिशय भार,
इस व्रतके बोले जाते हैं
मित्रो, ये पाँचों अतिचार ।५४।

जयकुमारने इस वर व्रतको
पालन करके सुख पाया,
वैश्य 'मूंछ-मक्खन' नहिं पाला,
'हाय द्रव्य' कर दुख पाया ;
पाँच अणुव्रत कहे इन्हींमें
मद्य मांस मधुका जो त्याग,
मिल जावे तो आठ मूल गुण
हो जाते हैं गृही-सुहाग ।५५।

चौथा परिच्छेद

गुणव्रत

मूल - गुणोंकी बढ़ती होवे
इसके लिए गुणव्रत तीन,
कहे श्रेष्ठ पुरुषोंने नीके,
जिनसे होवें जन दुख-हीन;
दिग्व्रत और अनर्थदंड-व्रत
व्रत भोगोपभोग-परिमाण,
इनको धारण करें भव्यजन
मान शास्त्रको सुदृढ़ प्रमाण।६८

दिग्व्रत

अमुक नदी तक, अमुक शैल तक
अमुक गाँव तक जाऊँगा,
दशों दिशामें अमुक कोससे
आगे पद न बढ़ाऊँगा;
ऐसी कर मर्यादा आगे
कभी उमर-भर नहिं जाना,
सूक्ष्म पापनाशक दिग्व्रत यह
इसे सज्जनोंने माना।६९

जो इस व्रतका पालन करते,
उन्हें नहीं होता है पाप,
मर्यादाके बाहर उनके
अणुव्रत होय महाव्रत आप;

प्रत्याख्यानावरण बहुत ही
मित्रो, कृशतर हो जाते,
इससे कर्म चरित्र-मोहिनी
मन्द मन्दतर पड़ जाते ।५८।

महाव्रत

तन-मन-वचन योगसे मित्रो,
कृत-कारित अनुमोदन कर,
होते हैं नौ भेद, इन्हींसे
तजना पाँचों पाप प्रखर;
कहे जगतमें ये जाते हैं
पंच महाव्रत सुखकारी,
बहुत अंशमें महाव्रती-सा
हो जाता दिग्व्रतधारी ।५९।

दसों दिशाकी जो मर्यादा
की हो, उसे न रखना याद,
भूल-भाल उसको तज देना
या तज देना धार प्रमाद;
ऊँचे - नीचे आगे - पीछे
अगल-बगल, मित्रो, बढ़ना,
दिग्व्रतके अतिचार कहाते
याद न मर्यादा रखना ।६०।

अनर्थदण्डविरति

दिङ्-मर्यादा जो की होवे,
उसके भीतर भी बिन काम ,
पापयोगसे विरक्त होना
है अनर्थदंड-व्रत नाम :
हिंसादान रु प्रमाद - चर्या
पापादेश-कथन अपध्यान ,
त्यों ही दुःश्रुति पाँचों ही ये
इस व्रतके हैं भेद सुजान ।८१।

हिंसादान

छुरी कटारी खड्ग खुर्पाता
अरन्यायुध फलसा तलवार ,
साँकल सींगी अस्त्र-शस्त्रका
देना, जिनसे होवे वार :
हिंसादान नामका मित्रो,
कहलाता है अनरथदंड ,
बुधजन इसको तज देते हैं
ज्यों नहिं होवे युद्ध प्रचंड ।८२।

प्रमादचर्या

पृथ्वी पानी अग्नि वायुका
बिना काम आरंभ करना ,
व्यर्थ छेदना वनस्पतीको
बे-मतलब चलना-फिरना :

औरोंको भी व्यर्थ घुमाना
है प्रमादचर्या दुखकर,
कहा अनर्थदंड है इसको.
शुभ चाहे तो इससे डर।६३।

पापोपदेश या पापादेश

जिससे धोखा देना आवे,
मनुज करे त्यों हिंसारम्भ,
तिर्यंचोंको संकट देवे,
बणिज करे फैलाकर दम्भ;

ऐसी-ऐसी बातें करना,
पापादेश कहाता है,
इस अनर्थदंडकको तजकर
उत्तम नर सुख पाता है।६४।

अपध्यान

राग-द्वेषके वशमें होकर
करते रहना ऐसा ध्यान,
उसकी प्रिया मुझे मिल जावे,
मिल जावें उसके धन-धान;

वह मर जावे, वह कट जावे,
उसको होवे जेल महान,
वह लुट जावे, संकट पावे,
है अनर्थदंडक अपध्यान।६५।

दुःश्रुति

जिनके कारणसे जाग्रत हों
राग-द्वेष मद काम-विकार,
आरँभ साहस और परिग्रह,
त्यों छावें मिथ्यात्व विचार;
मन मैला जिनसे हो जावे,
प्यारो, सुनना ऐसे ग्रन्थ,
दुःश्रुति नाम अनर्थ कहाता
कहते हैं ज्ञानी निर्ग्रन्थ।६६।

अनर्थदण्डव्रतके अतिचार

स्मराधीन हो हँसी-दिल्लगी
करना, भंड वचन कहना,
बक-बक करना, आँख लड़ाना,
काय - कुचेष्टामें बहना;
सजधजके सामान बढ़ाना,
बिना विचारे त्यों, प्रियवर,
तन-मन-वचन लगाना कृतिमें
हैं अतिचार सभी व्रत-हर।६७।

भोगोपभोग-परिमाण

इन्द्रिय-विषयोंको प्रतिदिन ही
कम कर राग घटा लेना,
है व्रत भोगोपभोग परिमित
इसकी ओर ध्यान देना;

पंचेन्द्रियके जिन विषयोंको
भोग छोड़ दें, वे हैं भोग,
जिन्हें भोगकर फिर भी भोगें
मित्रो, वे ही हैं उपभोग।६८।

त्रस जीवोंकी हिंसा नहिं हो,
होने पावे नहीं प्रमाद,
इसके लिए सर्वथा त्यागो
मांस-मद्य-मधु छोड़ विषाद;
अदरक निम्ब पुष्प बहुबीजक
मक्खन मूल आदि सारी,
तजो सचित चीजें, जिनमें हो
थोड़ा फल, हिंसा भारी।६९।

जो अनिष्ट हैं सत्पुरुषोंके
सेवन योग्य नहीं जो हैं,
उन विषयोंको सोच-समझकर
तज देना, जो व्रत सो है;
भोग और उपभोग-त्यागके
बतलाये यम-नियम उपाय,
अमुक समय तक त्याग 'नियम' है
जीवन-भरका 'यम' कहलाय।७०

नियम करनेकी विधि

भोजन वाहन शयन स्नान रुचि
इत्र पान कुंकुम - लेपन ,
गीत-वाद्य संगीत काम-रति
माला भूषण और वसन ;
इन्हें रात दिन पक्ष मास या
वर्ष आदि तक देना त्याग ,
कहलाता है 'नियम' और 'यम'
आजीवन इनका परित्याग ।७१।

भोगोपभोगपरिमाणके अतिचार

विषय-विषोंका आदर करना,
भुक्त विषयको करना याद ,
वर्तमानके विषयोंमें भी
रचे-पचे रहना अविषाद ;
आगामी विषयोंमें रखना
तृष्णा या लालसा अपार ,
विन भोगे विषयोंका अनुभव
करना, ये भोगातीचार ।७२।

पाँचवाँ परिच्छेद

शिक्षाव्रत—देशावकाशिक

पहला है देशावकाशि, पुनि
सामायिक, प्रोषध-उपवास,
वैयावृत्त, और ये चारों
शिक्षाव्रत हैं सुख-आवास ;
दिग्व्रतका लम्बा-चौड़ा थल
काल-भेदसे कम करना,
प्रतिदिन व्रत देशावकाशि सो
गृहीजनोंका सुख-झरना ।७३।

अमुक गेह तक, अमुक गली तक,
अमुक गाँव तक जाऊँगा,
अमुक खेतसे, अमुक नदीसे
आगे पग न बढ़ाऊँगा ;
एक वर्ष, छह मास, मास या
पखवाड़ा या दिन दो-चार,
सीमा काल-भेदसे श्रावक
इस व्रतको लेते हैं धार ।७४।

स्थूल-सूक्ष्म पाँचों पापोंका
हो जानेसे पूरा त्याग,
सीमाके बाहर सध जाते
इस व्रतसे सु महाव्रत आप ;

हैं अतिचार पाँच इस व्रतके
मँगवाना, प्रेषण करना,
रूप दिखाय इशारा करना,
चीज फेंकना, ध्वनि करना ।७५।

सामायिक

पूर्ण रीतिसे पंच पापका
परित्याग करना सज्ञान,
मर्यादाके भीतर - बाहर
अमुक समय धर समता ध्यान;
है यह सामायिक शिक्षाव्रत
अणुव्रतोंका उपकारक,
विधिसे अनलस सावधान हो
बनो सदा इसके धारक ।७६।

जब तक चोटी मूठी कपड़ा
बँधा रहेगा, मैं तब तक
सामायिक निश्चल साधूँगा,
यों विचार कर, निश्चय तक
मार पलाथी भलीभाँतिसे
कायोत्सर्ग रमाया कर,
है बैठना खड़ा रहना या
'समय' कहा जाता व्रत वर ।७७

घर हो, वन हो, चैत्यालय हो,
कुछ भी हो, निरुपद्रव हो,

हो एकान्त शान्त अति सुन्दर
परम रम्य औ शुचितर हो ;
ऐसे स्थलमें बड़ी खुशीसे
तनको मनको निश्चल कर,
एकभुक्त उपवास-दिवस या
प्रतिदिन ही सामायिक कर ।७८।

सामायिकके समय गृही
आरम्भ परिग्रह तजते हैं,
पहनाये हों वसन जिसे,
ऐसे मुनिसे वे दिखते हैं ;
साम्य भाव स्थिर रख मौनी रह
सब उपसर्ग उठाते हैं,
गरमी-सरदी मशक-डाँसके
परिषह सब सह जाते हैं ।७९।

अशुभरूप अशरण अनित्य यह
पर-स्वरूप संसार महान,
अतिशय दुःखपूर्ण है, तो भी
बना हुआ है मेरा स्थान ;
इससे बिलकुल उलटा सुखमय
मोक्ष-धाम शास्वत सत्तम,
सामायिकके समय भक्तजन
ध्यान धरो ऐसा उत्तम ।८०।

अपने साम्य भावको तजकर
कर देना चंचल तनको,
वाणीको चंचल कर देना,
कर देना चंचल मनको;
सामायिकका काल टालना
और पाठ रखना नहिं याद,
ये अतिचार पाँच इस व्रतके
कहे गये हैं बिना विवाद।८१।

प्रोषधोपवास

सदा अष्टमी चतुर्दशीको
तज देना चारों आहार,
यह प्रोषध-उपवास कहाता,
दिन-भर रहे धर्म-व्यवहार;
अंजन-मंजन, न्हाना-धोना
गन्ध-पुष्प सजधज करना,
आरँभ पाँच पाप हिंसादिक
इस दिन बिलकुल परिहरना।८२
तजना चारों आहारोंका
होय निराकुल, है 'उपवास',
एक बार खानेको कहते
'प्रोषध', जो है प्रभुपद दास;

दो प्रोषधके बिचमें करना
एक वास[1]का कहलाता,
शुद्ध 'प्रोषधोपवास' पूरा
भव्य जनोंका सुखदाता ।८३।

देखे-भाले बिन चीजोंका
लेना, मलका तज देना,
और बिछाना बिस्तरका त्यों
व्रत-कर्तव्य भुला देना;
तथा अनादर रखना व्रतमें,
हैं ये पाँचों ही अतिचार,
इन्हें छोड़कर व्रतको पालो
धारो उरमें धर्म-विचार ।८४।

वैयावृत्य

जो अनगार तपस्वी गुणनिधि
धर्म-हेतु उनको दे दान,
प्रतिफलकी इच्छा बिन है यह
वैयावृत्य सु व्रत सुख-खान;
गुण-रागी होकर मुनिवरके
चरण चापिये होय प्रसन्न,
उनका खेद दूर कर दीजे
सेवा कीजे जो हो अन्य ।८५।

---

१ उपवास

दानका स्वरूप

सूनारम्भ* तजा है जिनने
धर्म-कर्म-हित हर्षाकर,
नवधा-भक्ति भावसे, ऐसे
आर्योंका तू गौरव कर;
निर्लोभीपन, क्षमा, शक्ति त्यों
ज्ञान, भक्ति, श्रद्धा, सन्तोष,
निर्मल दाताके गुण हैं ये,
धारो इनको, तजकर दोष ।८६।

दान-फल

जिसने घर धर्मार्थ तजा,
उस अतिथीकी पूजा करना,
घर-धन्देसे बढ़े हुए
पापोंका है सचमुच हरना;
मुनिको नमनेसे ऊँचा कुल
रूप भक्तिसे मिलना है,
मान दास्यसे, भोग दानसे,
स्तुतिसे शुचि यश बढ़ना है ।८७

बड़का बीज भूमिमें जाकर
हो जाता है तरु भारी,

* सूना-(१) कूटना, (२) पीसना, (३) आग जलाना, (४) पानी भरना, (५) बुहारी देना।

घेर-घुमेर सघन घन सुन्दर
समय पाय छायाकारी ;
वैसे ही हो अल्प भले ही
पात्र-दान सुख करता है ,
समय पाय बहु फल देता है,
इष्ट लाभ बहु भरता है ।८८।

दानके भेद

भोजन भेषज ज्ञान-उपकरण
देना और अभय आवास ,
चार ज्ञानके धारी कहते
दान यही चारों हैं खास ;
इनके पालन करनेवाले
श्रीषेण और वृषभसेना ,
कोतवाल कौण्डीशव शूकर
हुए प्रसिद्ध समझ लेना ।८९।

देव-पूजा

प्रभु-पद काम-दहनकारी हैं,
वांछित फल देनेवाले ,
उनका प्रतिदिन पूजन करिये,
वे सब दुख हरनेवाले ;
जिन-पूजाको एक पुष्प ले
मेंढक चला मोद धरके ,

मुआ मार्गमें, हुआ देव वह,
महिमा महा प्रगट करके ।९०।

वैयावृत्य या दानके अतिचार

हरे पत्रके भीतर रखना,
हरे पत्रसे ढक देना,
देने-योग्य भोजनादिकको
पात्र-अनादर कर देना;
स्मरण न रखना देनेकी विधि
अथवा देना मत्सर कर,
हैं अतिचार पाँच इस व्रतके
इन्हें सर्वथा तू परिहर ।९१।

छठा परिच्छेद

सल्लेखना

आ जावे अनिवार्य जरा,
दुष्काल, रोग या कष्ट महान,
धर्म-हेतु तब तनु तज देना,
सल्लेखना-मरण सो जान;
अन्त समयका सुधार करना
यही तपस्याका है फल,
अतः समाधि-मरण हित भाई
करते रहो प्रयत्न सकल ।९२।

स्नेह, वैर, सम्बन्ध, परिग्रह
छोड़, शुद्ध मन त्यों होकर

क्षमा करे निज जन परिजनको
याचे क्षमा स्वयं सुखकर ;
कृत-कारित अनुमोदन सारे
पापोंका कर आलोचन ,
निश्छल जीवन-भरको धारे
पूर्ण महाव्रत दुख-मोचन ।९३।

शोक दुःख भय अरति कलुषता
तज विषादकी त्यों ही आह,
शास्त्र-सुधाको पीते रहना,
धारण कर पूरा उत्साह ;
भोजन तजकर रहे दूधपर,
दूध छोड़कर छाछ गहे ,
छाछ छोड़, ले प्रासुक जलको,
उसे छोड़ उपवास लहे ।९४।

कर उपवास शक्ति अपनीसे,
सर्व यत्नसे निज मनको
णमोकारमें तन्मय कर दे,
तज देवे नश्वर तनको ;
जीना चहना, मरना चहना,
डरना, मित्र याद करना ,
भावी भोग-वांछना करना
हैं अतिचार, इन्हें तजना ।९५।

जिनने धर्म पिया है वे जन
हो जाते हैं सब दुख-हीन,
तीर-रहित दुस्तर निःश्रेयस
सुख-सागरको पियें प्रवीन;
जहाँ नहीं हैं शोक दुःख भय
जन्म जरा बीमारी मौत,
है कल्याण नित्य केवल सुख,
पावन परमानँदका स्रोत।०६।

सल्लेखना मनुज जो धारें,
पाते हैं वे निरवधि मुक्ति,
विद्या, दर्शन, शक्ति, स्वस्थता,
हर्ष, शुद्धि औ अतिशय तृप्ति;
तीन लोकको उलट-पलट दे
चाहे ऐसा हो उत्पात,
नहीं कल्प-शतमें भी होता
मोक्ष-प्राप्त जीवोंका पात।०७।

कीट-कालिमा-हीन कनक-सी
अति कमनीय दीप्तिवाले,
तीनों लोक-शिरोमणि सोहें
निःश्रेयस पाने वाले;

धन पूजा ऐश्वर्य हुकूमत
सेना परिजन भोग सकल,
होय अलौकिक अतुल अभ्युदय,
सत्य-धर्मका ऐसा फल ।९८।

सातवाँ परिच्छेद

श्रावककी ग्यारह श्रेणियाँ या 'प्रतिमा'

१ दर्शन-प्रतिमा

ग्यारह पद होते श्रावकके,
प्रति पदमें पहले गुण-युत,
अपने गुण मिल होय पूर्णता,
यों बुध कहें सुमति संयुत;
तत्त्व-पथिक है, शुचि-दर्शन है,
भव-तनु-भोग विरागी है,
परमेष्ठी-पद शरणागत है,
दर्शन-प्रतिमा भागी है ।९९।

२ व्रत-प्रतिमा

पाँच अणुव्रत, सात शील जो
निरतिचार सुखसे धरता,
शल्य-रहित व्रत प्रतिमाधारी,
व्रतियोंमें माना जाता;

शिक्षाव्रत हैं चार, बताये
तीन गुणव्रत उपकारी,
ये सातों मिल शील कहाते,
इन्हें धरे व्रतका धारी।१००

३ सामायिक-प्रतिमा

चार बार करके आवर्तन,
चार दिशामें चार प्रणाम
करे, परिग्रह सारे तज दे,
धर ले कायोत्सर्ग ललाम;
खड्गासन या पद्मासन धर,
होकर मन-वच-तनसे शुद्ध,
करे बन्दना तीन कालमें,
सामायिक-धारी सो बुद्ध।१०१

४ प्रोषध-प्रतिमा

चारों पर्वोंमें हर महिने
धर्मध्यानमें रत रहकर,
शक्ति छुपाये बिन प्रोषधका
नियम करें, वे प्रोषध-धर;

५ सचित्त-त्याग-प्रतिमा

जो नहिं खावें कन्द-मूल, फल,
शाखा, पुष्प, बीज कच्चे,
दया-मूर्ति वे सचित्त-त्यागी
प्रतिमाधारी हैं सच्चे।१०२

६ रात्रिभुक्ति-त्याग-प्रतिमा

जीवोंपर होकर दयालु जो
रजनीमें चारों आहार
करे नहीं, सो रात्रि-भुक्तिका
त्यागी दयावान् निर्धार ;

७ ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा

मल-कारण मल-बीज घृणायुत
जान अंग तज देना काम ,
मित्रो. है यह सप्तम प्रतिमा,
ब्रह्मचर्य है इसका नाम ।१०३

८ आरम्भ-त्याग-प्रतिमा

सेवा कृषि वाणिज्यादिकके
आँरभसे सब हट जाना ,
हिंसा हो नहिं, इस विचारसे
आँरभ-त्याग इसे माना ;

९ परिग्रह-त्याग-प्रतिमा

ममता तज, निर्ममत्व-रत हो
बाह्य परिग्रह दस तजना ,
स्वस्थ और सन्तोषी होना
परिग्रहत्याग इसे कहना ।१०४

१० अनुमति-त्याग-प्रतिमा

नहिं जिनकी अनुमति आरँभमें
परिग्रहमें नहिं होती है,
सारे ही लौकिक कामोंमें
जिनकी अनुमति सोती है;
अनुमति-त्यागी प्रतिमाधारी
वे सम-मति कहलाते हैं,
साध भली विधि इस पदवीको
ऊँचा पद पा जाते हैं।१०५

११ उत्कृष्ट श्रावक

घरको तज मुनि-वनको जाकर
गुरु-समीप व्रत धारण कर,
तपते हैं भिक्षाशन करते
खंड-वस्त्र-धारी होकर;
उत्तम श्रावकका पद यह है,
जो मनुष्य इसको गहते,
उन्हें श्रेष्ठजन 'क्षुल्लक' 'ऐलक'
भागयवान् श्रावक कहते।१०६

पाप बैरी और धर्म मित्र

सत्य बात तो यह है मित्रो,
पाप जीवका बैरी है,
धर्म बन्धु है, धर्म मित्र है,
धरो इसे, क्या देरी है?

रत्नोंका भण्डार या 'रत्नकरण्ड'

निश्चय करता हुआ इसी विध,
इसे पढ़ेगा जो मानव,
अच्छेसे अच्छा सर्वोत्तम
ज्ञानी होवेगा वह ध्रुव ।१०७

हैं दर्शन-चारित्र-ज्ञान ये
तीनों रत्न बड़े सुन्दर,
'रत्नकरण्ड' बनाते हियको,
जो जन धरें इन्हें शुचितर;
भली भाँति पुरुषार्थसिद्धि हो
उनके चरणोंकी दासी
बरती है बन पतिव्रता-सी
देती है यों सुख-राशी ।१०८

कामीको ज्यों सुख देती है
रमणी, त्यों सुख दो मुझको,
माता लाड़ लड़ाती सुतको,
वैसे लाड़ करो मुझको;
ज्यों पवित्र करती है कुलको
अति पवित्र सुगुणा कन्या,
करो मुझे पावन वैसे ही
सम्यग्दर्शन श्रीधन्या ।१०९।

तत्त्वार्थ-सूत्र

(मोक्षशास्त्र)

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्म-भूभृतां ;
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ।

[१]

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।१। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।२। तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।३। जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं ।४। नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ।५। प्रमाणनयैरधिगमः ।६। निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ।७। सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ।८। मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानं ।९। तत्प्रमाणे ।१०। आद्ये परोक्षम् ।११। प्रत्यक्षमन्यत् ।१२। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरं ।१३। तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं ।१४। अवग्रहेहावायधारणाः ।१५। बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणां ।१६। अर्थस्य ।१७। व्यंजनस्यावग्रहः ।१८। न चक्षुरनिन्द्रि-

याभ्यां।१९। श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं ।२०। भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां ।२१। क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां ।२२। ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ।२३। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ।२४। विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ।२५। मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु । २६ । रूपिष्ववधेः । २७ । तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ।२८। सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य । २९ । एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ।३०। मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च । ३१ । सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।३२ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः । ३३ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ।१।

[२]

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ।१। द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं

सम्यक्त्वचारित्रे। ३। ज्ञानदर्शनदान-लाभभोगोपभोगवीर्याणि च ।४। ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ।५। गति कषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड् भेदाः। ६। जीवभव्याभव्यत्वानि च ।७। उपयोगो लक्षणम् ।८। स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।९। संसारिणो मुक्ताश्च ।१०। समनस्काऽमनस्काः ।११। संसारिणस्त्रसस्थावराः ।१२। पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।१३। द्वींद्रियादयस्त्रसाः ।१४। पंचेंद्रियाणि ।१५। द्विविधानि ।१६। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।१७। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।१८। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि।१९। स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः। २०। श्रुतमनिंद्रियस्य ।२१। वनस्पत्यन्तानामेकं ।२२। कृमि पिपीलिका भ्रमर मनुष्यादीनामेकैक-वृद्धानि ।२३। संज्ञिनः समनस्काः ।२४। विग्रहगतौ कर्मयोगः।२५। अनुश्रेणि गतिः ।२६। अविग्रहा जीवस्य ।२७। विग्रहवती

च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ।२८। एक-समयाऽविग्रहा ।२९। एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ।३० सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ।३१। सचित्तशीलसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।३२। जरायुजांडजपोतानां गर्भः ।३३। देवनारकाणामुपपादः ।३४। शेषाणां सम्मूर्च्छनं ।३५। औदारिक-वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि ।३६। परं परं सूक्ष्मं ।३७। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।३८। अनंतगुणे परे ।३९। अप्रतीघाते ।४०। अनादि सम्बन्धे च ।४१। सर्वस्य ।४२। तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।४३। निरुपभोगमंत्यम् ।४४। गर्भसंमूर्च्छनजमाद्यम् ।४५। औपपादिकं वैक्रियिकं ।४६। लब्धिप्रत्ययं च ।४७। तैजसमपि ।४८। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।४९। नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ।५०। न देवाः ।५१। शेषास्त्रिवेदाः ।५२। औपपादिकचरमोत्तदेहाऽसंख्येय वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।५३।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।२।

[३]

रत्न शर्करा बालुका पंक धूम तमोमहातम :
प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः
सप्ताऽधोधः ।१। तासु त्रिंशत्पंचविंशति-
पंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि
पंच चैव यथाक्रमं ।२। नारका नित्याशुभ-
तरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः । ३ ।
परस्परोदीरितदुःखाः ।४। संक्लिष्टाऽसुरो-
दीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः । ५ । तेष्वे-
कत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्
सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः । ६ ।
जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-
समुद्राः ।७। द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षे-
पिणो वलयाकृतयः ।८। तन्मध्येमेरुनाभि-
र्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जंबूद्वीपः
।९। भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतै-
रावतवर्षाः क्षेत्राणि ।१०। तद्विभाजिनः
पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-
नीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ।११।
हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ।१२।

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्य-
विस्ताराः ।१३। पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरि-
रिमहापुंडरीकपुंडरीकाहृदास्तेषामुपरि ।१४
प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कंभो
हृदः । १५ । दशयोजनावगाहः । १६ ।
तन्मध्ये योजनं पुष्करं ।१७। तद्द्विगुणद्वि-
गुणा हृदाः पुष्कराणि च ।१८। तन्निवासि-
न्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः
पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः
।१९। गंगासिंधुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरि-
कांतासीतासीतोदानारीनरकांतासुवर्णरू-
प्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः
।२०। द्वयोर्द्वयोः पूर्वाःपूर्वगाः।२१। शेषास्त्व-
परगाः ।२२। चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता
गंगासिंध्वादयो नद्यः ।२३। भरतः षड्-
विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः षट् चैको-
नविंशतिभागा योजनस्य ।२४। तद्-
द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदे-
हान्ताः ।२५। उत्तरा दक्षिणतुल्याः ।२६।
भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्या-

मुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ।२७। ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ।२८। एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ।२९। तथोत्तराः ।३०। विदेहेषु संख्येयकालाः ।३१। भरतस्य विष्कंभो जंबूद्वीपस्य नवतिशतभागः ।३२। द्विर्धातकीखंडे ।३३। पुष्करार्द्धे च ।३४। प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।३५। आर्याम्लेच्छाश्च ।३६। भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।३७। नृस्थिती पराऽवरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।३८। तिर्यग्योनिजानां च । ३९ ।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ।३।

[४]

देवाश्चतुर्णिकायाः ।१। आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।२। दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यंताः ।३। इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ।४। त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यंतरज्योतिष्काः ।५। पूर्वयोर्द्वीन्द्राः । ६। कायप्रवीचारा आ

ऐशानात् ।७। शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः ।८। परेऽप्रवीचाराः ।९। भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।१०। व्यंतराः किन्नर किंपुरुष महोरग गन्धर्व यक्ष राक्षस भूतपिशाचाः ।११। ज्योतिष्काः सूर्याचंद्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ।१२। मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ।१३। तत्कृतः कालविभागः ।१४। वहिरवस्थिताः ।१५। वैमानिकाः ।१६। कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।१७। उपर्युपरि ।१८। सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलांतवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रसतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।१९। स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोधिकाः ।२०। गतिशरीरपरिग्रहाभिमतो हीनाः ।२१। पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ।२२। प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ।२३। ब्रह्मलोका-

लया लौकान्तिकाः ।२४। सारस्वतादित्य-
वह्न्यरुण गर्दतोय तुषिता व्यावाधारिष्टाश्च
।२५। विजयादिषु द्विचरमाः ।२६। औप-
पादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः।२७।
स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरो-
पमत्रिपल्योपमार्धहीनमिताः ।२८। सौध-
र्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ।२९। सान-
त्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ।३०। त्रिसप्तनवै-
कादशत्रयोदशपंचदशाभिरधिकानि तु ।३१।
आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु
विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ।३२। अपरा
पल्योपममधिकं ।३३। परतः परतः पूर्वा-
पूर्वाऽनन्तरा ।३४। नारकाणां च द्वितीया-
दिषु ।३५। दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ।३६।
भवनेषु च ।३७। व्यन्तराणां च ।३८। परा
पल्योपममधिकं ।३९। ज्योतिष्काणां च
।४०। तदष्टभागोऽपरा ।४१। लौकान्ति-
कानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।४२।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।४।

[५]

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।१। द्रव्याणि ।२। जीवाश्च ।३। नित्यावस्थिता-न्यरूपाणि ।४। रूपिणः पुद्गलाः ।५। आ आकाशादेकद्रव्याणि ।६। निष्क्रियाणि च ।७। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानां ।८। आकाशस्यानन्ताः ।९। संख्येयासंख्ये-याश्च पुद्गलानाम् ।१०। नाणोः ।११। लोका-काशेऽवगाहः ।१२। धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।१३। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ।१४। असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ।१५। प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।१६। गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।१७ आकाशस्यावगाहः ।१८। शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ।१९। सुखदुःख-जीवितमरणोपग्रहाश्च ।२०। परस्परोपग्रहो जीवानां ।२१। वर्त्तनापरिणामक्रियाःपरत्वा-परत्वे च कालस्य ।२२। स्पर्शरसगन्धवर्ण-वन्तः पुद्गलाः ।२३। शब्दबन्धसौक्ष्म्य-स्थौल्य संस्थान भेदतमश्छायातपोद्योतव-

न्तश्च ।२४। अणवः स्कन्धाश्च ।२५। भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ।२६। भेदादणुः ।२७। भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ।२८। सद्द्रव्य-लक्षणम् ।२९। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।३०। तद्भावाव्ययं नित्यम् ।३१। अर्पिता-नर्पितसिद्धेः ।३२। स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ।३३। न जघन्यगुणानाम् ।३४। गुणसाम्ये सदृशानाम् ।३५। द्व्यधिकादिगुणानां तु ।३६। बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।३७। गुणपर्ययवद्द्रव्यम् ।३८। कालश्च ।३९। सोऽनन्तसमयः ।४०। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।४१। तद्भावः परिणामः ।४२।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ।५।

[६]

कायवाङ्मनःकर्म योगः ।१। स आस्रवः ।२। शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ।३। सक-षायाकषाययोःसाम्परायिकेर्यापथयोः।४। इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पंचचतुःपंचपंच-विंशतिसंख्याःपूर्वस्य भेदाः।५।तीव्रमंदज्ञा-ताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्वि-

शेषः ।६। अधिकरणं जीवाजीवाः ।७। आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमत कषाय विशेषैस्त्रि स्त्रि स्त्रि श्चतुश्चैकशः ।८। निर्वर्त्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गाद्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम् ।९। तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावर्णयोः ।१०। दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ।११। भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।१२। केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादोदर्शनमोहस्य।१३ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य । ।१४। बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।१५ माया तैर्यग्योनस्य।१६। अल्पारम्भपरिग्रत्वं मानुषस्य ।१७। स्वभावमार्दवं च ।१८। निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ।१९। सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जरावालतपांसि दैवस्य ।२०। सम्यक्त्वं च ।२१। योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।२२। तद्विपरीतं शुभस्य।२३। दर्शनविशुद्धिर्विन-

यसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण-
ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी
साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहु-
श्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग-
प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकर-
त्वस्य ।२४। परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्-
गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।२५।
तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य
।२६। विघ्नकरणमन्तरायस्य ।२७।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।६।

[७]

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरति-
र्व्रतं ।१। देशसर्वतोऽणुमहती ।२। तत्स्थैर्यार्थं
भावनाःपंच पंच ।३। वाङ्मनोगुप्तीर्यादा-
ननिक्षेपण समित्यालोकित पान भोजनानि
पंच ।४। क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्या-
नान्यनुवीचिभाषणं च पंच ।५। शून्यागा-
रविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशु-
द्धिसधर्माविसंवादाः पंच।६। स्त्रीरागकथा-
श्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षणपूर्वरतानुस्म -

रणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पंच ।७। मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ।८। हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ।९। दुःखमेव वा ।१०। मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाऽविनयेषु ।११। जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ।१२। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।१३। असदभिधानमनृतम् ।१४। अदत्तादानं स्तेयम् ।१५। मैथुनमब्रह्म ।१६। मूर्च्छा परिग्रहः ।१७। निःशल्यो व्रती ।१८। अगार्यनगारश्च ।१९। अणुव्रतोऽगारी ।२०। दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च ।२१। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ।२२ शंका कांक्षा विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः ।२३। व्रतशीलेषु पंच पंच यथाक्रमम् ।२४। बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ।२५। मिथ्योपदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रिया-

न्यासापहारसाकारमंत्रभेदाः ।२६। स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ।२७। परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनानंगक्रीड़ाकामतीव्राभिनिवेशाः ।२८। क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।२९। ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ।३०। आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ।३१। कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ।३२। योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ।३३। अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ।३४। सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ।३५। सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ।३६। जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ।३७। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।३८। विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ।३९।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ।७।

[८]

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाययोगा बन्धहेतवः ।१। सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।२। प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ।३। आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ।४। पंचनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमम् ।५। मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ।६। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ।७। सदसद्वेद्ये ।८। दर्शनचारित्रमोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोड़शभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदाअनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ।९। नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।१०। गतिजाति शरीरांगोपांगनिर्माण बन्धनसंघात-

संस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघाताऽऽतपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्ति सेतराणि तीर्थकरत्वं च ।११। उच्चैर्नीचैश्च ।१२। दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।१३। आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः ।१४। सप्ततिर्मोहनीयस्य ।१५। विंशतिर्नामगोत्रयोः ।१६। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ।१७। अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ।१८। नामगोत्रयोरष्टौ ।१९। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ।२०। विपाकोऽनुभवः ।२१। स यथानाम ।२२। ततश्च निर्जरा ।२३। नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ।२४। सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ।२५। अतोऽन्यत्पापम् ।२६।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ।८।

[९]

आस्रवनिरोधः संवरः ।१। स गुप्तिसमिति-धर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।२। तपसा निर्जरा च ।३। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ।४। ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ।५। उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौच-सत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ।६। अनित्याशरणसंसारैकत्वान्य त्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभ धर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिंतनमनुप्रेक्षाः ।७। मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परी-षहाः ।८। क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशक-नाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽक्रोश-वधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्का-रपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि ।९। सूक्ष्म-साम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ।१०। एकादश जिने।११।बादरसाम्पराये सर्वे।१२ ज्ञानावरणे प्रज्ञाऽज्ञाने।१३। दर्शनमोहान्त-राययोरदर्शनालाभौ।१४। चारित्रमोहे ना-ग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याऽक्रोशयाचनासत्कार-

पुरस्कारा: ।१५। वेदनीये शेषा: ।१६। एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ।१७। सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायययथाख्यातमिति चारित्रं।१८। अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ।१९। प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ।२०। नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् । २१ । आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ।२२। ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ।२३। आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम्।२४। वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽम्नायधर्मोपदेशाः ।२५। बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।२६। उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।२७। आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ।२८। परे मोक्षहेतू ।२९। आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ।३०। विपरीतं

मनोज्ञस्य।३१।वेदनायाश्च।३२।निदानं च।३३ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ।३४। हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ।३५। आज्ञाऽपायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्।३६। शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ।३७। परे केवलिनः ।३८। पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवृत्तीनि ।३९। त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ।४०। एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ।४१। अवीचारं द्वितीयम् ।४२। वितर्कः श्रुतम्।४३। वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ।४४। सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाःक्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ।४५। पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ।४६। संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ।४७।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।९।

[१०]

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।१। बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ।२। औपशमिकादिभव्यत्वानां च ।३। अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ।४। तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ।५। पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।६। आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाम्बुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ।७ धर्मास्तिकायाभावात् ।८। क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तरसंख्याऽल्पबहुत्वतः साध्याः ।९।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।१०।

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफम् ;
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ।
दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ;
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ।
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्ध्रपिच्छोपलक्षितम् ;
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम् ।

भक्तामर-स्तोत्र

[श्रीमानतुंगाचार्य-विरचित 'आदिनाथ-स्तोत्र']

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ।२।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ,
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ।३।

वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र, शशांककान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ।४।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ।५।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ।६।

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।७।

मत्वेति नाथ, तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ।८।

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभांजि ।९।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।१०।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेः रसितुं क इच्छेत् ।११।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।१२।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ।१३।

सम्पूर्णमण्डलशशांककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ।१४।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ।१५।
निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ, जगत्प्रकाशः ।१६
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके ।१७।
नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम् ।१८।
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ।१९।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेपि ।२०।
मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ, भवान्तरेपि ।२१।
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ।२२।
त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांसं-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवश्शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः।२३
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनंगकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ।२४।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोसि ।२५।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय ।२६।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।२७।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ।२८।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ।२९।

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ।३०।
छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ।३१।
गम्भीरताररवपूरितदिग्विभागस्
त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ।३२।
मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ।३३।
शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ।

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ।३५।

उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकान्ती
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र, धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ।३६।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र,
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि ।३७

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ।३८

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ।३९।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम् ।
विश्वं जिघित्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम् ।४०।
रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंकस्
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ।४१।
वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ।४२।
कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास्
त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ।४३।
अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रास्
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ।४४

उद्‌भूत भीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पादपंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ।४५।

आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः ।
त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ।४६।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।४७।

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ।४८

सामायिक पाठ

१—प्रतिक्रमण-कर्म

काल अनन्त भ्रम्यो जगमें, सहिये दुख भारी; जन्म-मरण नित किये, पापको है अधिकारी। कोटि भवान्तर माहिं मिलन दुर्लभ सामायिक; धन्य आज मैं भयो, योग मिलियो सुखदायक।१। हे सर्वज्ञ जिनेश, किये जे पाप जु मैं अब; ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्ति विना लभ। आप समीप हजूर माहिं मैं खड़ो-खड़ो सब; दोष कहूँ सो सुनो, करो नठ, दुःख देहिं सब।२। क्रोध-मान-मद-लोभ-मोह-मायावश प्रानी; दुःख-सहित जे किये, दया तिनकी नहिं आनी। विना प्रयोजन एकेन्द्रिय वि-ति-चउ-पंचेन्द्रिय; आप प्रसादहिं मिटै दोप जो लग्यो मोहि जिय।३। आपसमें इक ठौर थाप करि जे दुख दीने; पेलि दिये पग-तले दाबि करि प्राण हरीने। आप जगतके जीव जिते, तिन सबके नायक; अरज करूँ मैं, सुनो,

दोष मेटो दुखदायक ।४। अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय; तिनके जे अपराध भये, ते क्षमा क्षमा किय। मेरे जे अब दोष भये, ते क्षमहु दयानिधि; यह पड़िकोणो कियो आदि षट-कर्म माहिं विधि ।५।

२—प्रत्याख्यान-कर्म

[इसके आदि या अन्तमें 'आलोचना-पाठ' (पृष्ठ १६५) पढ़कर फिर तीसरे सामायिक-कर्मका पाठ करना चाहिये]

जो प्रमाद-वश होय विराधे जीव घनेरे;
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे।
सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादैं;
जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख, दुःख न लाधैं।६
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ;
किये पाप अघ-ढेर पापमति होय चित्त दुठ।
निन्दूँ हूँ मैं बार-बार निज जियको गरहूँ;
सब विधि धर्म उपाय पाय, फिर पापहि करहूँ ।७। दुर्लभ है नर-जन्म तथा श्रावक-कुल भारी; सत्संगति संयोग धर्म जिन श्रद्धा धारी। जिन-वचनामृत धार समावर्तै

जिनवानी; तोहू जीव सँघारे धिक-धिक-धिक हम जानी।८। इन्द्रिय-लम्पट होय, खोय निज ज्ञान-जमा सब; अज्ञानी जिमि करै तिसी विध हिंसक ह्वै अब। गमनागमन करन्तो जीव विराधे भोले; ते सब दोष किये, निन्दूँ अब मन-वच तोले।९। आलोचन-विधि थकी दोष लागे जु घनेरे; ते सब दोष विनाश होउ तुमतैं जिन मेरे। बार-बार इस भाँति मोह-मद दोष कुटिलता; ईर्षादिकनें भये निन्दिये जे भयभीता।१०।

३—सामायिक भाव-कर्म

सब जीवनमें मेरे समता-भाव जग्यो है; सब जिय मो-सम, समता राखो भाव लग्यो है। आर्त्त-रौद्र द्वय ध्यान छाँड़ि करिहूँ सामायिक; संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव-बधायक।११। पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउ काय वनस्पति; पंचहि थावर माहिं तथा त्रस जीव बसैं जिति। बेइन्द्रिय तिय चउ पंचेन्द्रिय माहिं

जीव सब; तिनतैं क्षमा कराऊँ, मुझपर क्षमा करो अब ।१२। इस अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण; महल मसान समान शत्रु अरु मित्र हि सम गण। जामन-मरण समान जानि हम समता कीनी। सामायिकका काल जिते, यह भाव नवीनी ।१३। मेरो है इक आतम, तामें ममत जु कीनो; और सबै मम भिन्न जानि समता-रस भीनो। मात पिता सुत बन्धु मित्र तिय आदि सबै यह; मोतैं न्यारे जानि जथारथ रूप करो गह ।१४। मैं अनादि जग-जाल माहिं फँसि रूप न जान्यो; एकेन्द्रिय दे आदि जन्तुको प्राण हरान्यो। ते सब जीव-समूह सुनो मेरी यह अरजी; भव-भवको अपराध छिमा कीज्यो कर मरजी ।१५।

४—स्तवन-कर्म

नमूँ ऋषभ जिनदेव, अजित जिन जीत-कर्मको। सम्भव भव-दुखहरन, करन अभिनन्द शर्मको। सुमति सुमतिदातार

तार भव-सिन्धु पार कर; पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीतिधर।१६। श्रीसुपार्श्व कृत-पाश-नाश भव जास शुद्ध कर। श्री चन्द्रप्रभ चन्द्र-कान्ति सम देह-कान्तिधर। पुष्पदन्त दमि दोष-कोष भवि-तोष रोषहर। शीतल शीतल-करन हरन भव-ताप दोष-हर।१७। श्रेय-रूप जिन श्रेय, ध्येय नित सेय भव्य-जन; वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभय हन। विमल विमलमति देन, अन्तगत है अनन्त जिन; धर्म शर्म शिव-करन शान्ति जिन शान्ति-विधायिन।१८। कुन्थ कुन्थु-मुख जीवपाल, अरनाथ जाल-हर। मल्लि मल्ल-सम मोह-मल्ल मारन प्रचार-धर। मुनिसुव्रत व्रत-करन, नमत सुर-संघहि नमि जिन; नेमिनाथ जिन नेमि धर्म-रथ माँहि ज्ञानधन।१९। पार्श्वनाथ जिन पार्श्व-उपल सम मोक्ष रमापति; वर्द्धमान जिन नमूँ वमूँ भव-दुःख कर्म-कृत। या विध मैं जिन-संघरूप चउवीस संख्यधर। स्तवूँ नमूँ हूँ बार-बार वन्दूँ शिव-सुखकर।२०।

५—बन्दना-कर्म

बन्दूँ मैं जिन वीर धीर महावीर सु सन्मति; वर्द्धमान अति वीर बन्दहूँ मन-वच-तन-कृत। त्रिशला-तनुज महेश धीश विद्यापति बन्दूँ; बन्दूँ नितप्रति कनक-रूप-तनु पाप-निकन्दूँ ।२१। सिद्धारथ नृप-नन्द, द्वन्द-दुख दोष मिटावन; दुरित-दवानल ज्वलित-ज्वाल, जग-जीव उधारन। कुंडलपुर करि जन्म जगत-जिय आनँद-कारन; वर्ष बहत्तर आयु पाय सब ही दुख टारन ।२२। सप्त हस्त तनु तुंग, भंग-कृत जन्म-मरण भय; बाल-ब्रह्ममय, ज्ञेय-हेय-आदेय-ज्ञानमय। दे उपदेश उधारि तारि भव-सिन्धु जीव-घन; आप बसे शिव माहिं, ताहि बन्दौं मन-वच-तन ।२३। जाके बन्दन थकी दोष-दुख दूरहि जावै; जाके बन्दन थकी मुक्ति-तिय सनमुख आवै। जाके बन्दन थकी बन्द्य होवें सुरगनके; ऐसे वीर जिनेश बन्दहूँ क्रमयुग तिनके ।२४।

सामायिक षटकर्म माहिं वन्दन यह पंचम; वन्दूँ वीर जिनेन्द्र इन्द्र-शत-वन्द्य वन्द्य मम। जन्म-मरण भय हरो, करो अघ शान्ति, शान्तिमय; मैं अघ-कोष सुपोष दोषको दोष विनाशय।२५।

६—कायोत्सर्ग-कर्म

कायोत्सर्ग विधान करूँ अन्तिम सुखदाई; काय त्यजन-मय होय, काय सबको दुखदाई। पूरब दक्षिण नमूँ दिशा पश्चिम उत्तर मैं। जिन-गृह वन्दन करूँ, हरूँ भव-पाप-तिमिर मैं।२६। शिरोनती मैं करूँ, नमूँ मस्तक कर धरिकैं; आवर्तादिक क्रिया करूँ मन-वच मद हरिकैं। तीन लोक जिन-भवन माहिं जिन हैं जु अकृत्रिम; कृत्रिम हैं द्वय-अर्द्धद्वीप माहीं वन्दूँ जिम।२७। आठ कोड़ि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं; च्यार शतकपर असी एक जिन-मन्दिर जानूं। व्यन्तर ज्योतिषि माहिं संख्य-रहिते जिन-मन्दिर; ते सब वन्दन करूँ, हरहु मम पाप

संघ-कर ।२८। सामायिक सम नाहिं और कोउ वैर-मिटायक; सामायिक सम नाहिं और कोउ मैत्री-दायक। श्रावक अणुव्रत आदि अन्त सप्तम गुणथानक; यह आवश्यक-किये होय निश्चय दुख हानक ।२९। जे भवि आतम-काज करन उद्यमके धारी; ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी। राग रोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब; बुध 'महाचन्द्र' विलाय जायँ तातैं कीज्यो अब ।३०।

आलोचना-पाठ

बन्दौं पाँचो परम गुरु, चौबीसो जिनराज;
कहूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि - करनके काज।

सुनिये जिन अरज हमारी; हम दोष किये अति भारी। तिनकी अब निर्वृति काजा; तुम सरन लही जिनराजा ।२। इक-वे-ते-चउ इन्द्री वा; मन - रहित - सहित जे जीवा। तिनकी नहिं करुना धारी; निरदइ है घात विचारी ।३। समरम्भ समारँभ

आरँभ; मन-वच-तन कीने प्रारँभ। कृत-कारित-मोदन करिकैं; क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।४। शत-आठ जु इमि भेदनतैं; अघ कीने पर-छेदनतैं। तिनकी कहुँ कौलों कहानी; तुम जानत केवलज्ञानी।५। विपरीत एकान्त विनयके; संशय अज्ञान कुनयके। - वश होय घोर अघ कीने; बचतैं नहिं जात कहीने।६। कुगुरुनकी सेवा कीनी; केवल अदया करि भीनी। या विधि मिथ्यात भ्रमायो; चहुँ गति मधि दोष उपायो।७। हिंसा पुनि झूठ जु चोरी; पर-वनितासों दृग-जोरी। आरम्भ परिग्रह भीनो; पन पाप जु या विध कीनो।८। सपरस रसना घ्राननको; चखु कान विषय-सेवनको। बहु करम किये मनमानी; कछु न्याय-अन्याय न जानी।९। फल पंच उदम्बर खाये; मधु मांस मद्य चित चाहे। नहिं अष्ट मूलगुण-धारी; व्यसनन सेये दुखकारी।१०। दुइ-बीस अभख जिन गाये; सो भी निश-दिन

मुंजाये। कछु भेदाभेद न पायो; ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ।११। अनन्तानु-जु-बन्धी जानो; प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो। संज्वलन चौकरी गुनिये; सब भेद जु षोडश मुनिये। परिहास अरति रति शोगा; भय ग्लानि तिविद संजोगा। पन-वीस जु भेद भये इम; इनके वश पाप किये हम ।१३। निद्रा-वश शयन करायो; सुपने मधि दोष लगायो। फिर जाग विषय-वन धायो; नाना विध विष-फल खायो ।१४। कियऽहार निहार-विहारा; इनमें नहिं जतन विचारा। विन देखी धरी उठाई; बिन शोधी वस्तु हु खाई ।१५। तब ही परमाद सतायो; बहु विधि विकलप उपजायो। कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है; मिथ्या-मति छाय गई है ।१६। मरजादा तुम ढिंग लीनी; ताहूमें दोष जु कीनी। भिन-भिन अब कैसें कहिये; तुम ज्ञान विषैं सब पइये ।१७। हा हा, मैं दुठ अपराधी; त्रस-जीवन-राशि

विराधी। थावरकी जतन न कीनी ; उरमें करुना नहिं लीनी ।१८। पृथिवी बहु खोद कराई; महलादिक जगाँ चिनाई। पुनि बिन-गाल्यो जल ढोल्यो; पंखातैं पवन बिलोल्यो ।१९। हा हा, मैं अदयाचारी ; बहु हरित-काय जु बिदारी। ता मधि जीवनके खन्दा; हम खाये धरि आनन्दा ।२०। हा हा, परमाद-बसाई; बिन देखे अगिनि जलाई। ता मधि जे जीव जु आये; ते हू परलोक सिधाये ।२१। बींध्यो अन राति पिसायो; ईंधन बिन शोधि जलायो। झाडू ले जगाँ बुहारी; चिंटि आदिक जीव बिदारी ।२२। जल छानि जिवानी कीनी; सो हू पुनि डारि जु दीनी। नहिं जल-थानक पहुँचाई; किरिया-बिन पाप उपाई ।२३। जल मल मोरिन गिरवायो; कृमि-कुल बहु घात करायो। नदियन बिच चीर धुवाये; कोस्नके जीव मराये ।२४। अन्नादिक शोध कराई: तामें जु जीव निसराई। तिनका नहिं जतन

कराया; गरियालैं धूप डराया ।२५। पुनि द्रव्य कमावन काजे; बहु आरँभ हिंसा साजे। कीये तिसना-बस भारी; करुना नहिं रंच विचारी ।२६। इत्यादिक पाप अनन्ता; हम कीने श्री भगवन्ता। सन्तति चिरकाल उपाई; बानीतैं कहिय न जाई।२७। नाको जु उदय अब आयो; नाना विध मोहि सतायो। फल भुंजत जिय दुख पावै; बचतैं कैसें करि गावै ।२८। तुम जानत केवलज्ञानी; दुख दूर करो शिव-थानी। हम तो तुम सरन लही है; जिन, तारन विरद सही है ।२९। जो गाँव-पती इक होवै; सो भी दुखिया-दुख खोवै। तुम तीन भुवनके स्वामी; दुख मेटो अन्तरजामी ।३०। द्रोपदिको चीर बढ़ायो; सीता प्रति कमल रचायो। अंजन-से किये अकामी; दुख मेटो अन्तरजामी ।३१। मेरे अवगुन न चितारो; प्रभु अपनो विरद निहारो। सब दोष-रहित करि स्वामी; दुख मेटो

अन्तरजामी।३२। इन्द्रादिक पदवि न चाहूँ; विषयनिमें नाहिं लुभाऊँ। रागादिक दोष हरीजै; परमातम निज-पद दीजै।३३।

दोष-रहित जिनदेवजी, निज-पद दीजो मोय;
सब जीवनके सुख बढ़ै, आनँद-मंगल होय।
अनुभव-मानिक पारखी, 'जौंहरि' आप जिनन्द;
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन-सरन आनन्द।

समाधि-मरण

[कविवर द्यानतराय-कृत 'छोटा समाधि-मरण']

गौतमस्वामी बन्दौं नामी, मरण-समाधि भला है। मैं कब पाऊँ, निश-दिन ध्याऊँ, गाऊँ बचन-कला है। देव-धर्म-गुरु प्रीति महा दृढ़, सप्त व्यसन नहिं जाने। त्यागि बाईस अभक्ष संयमी, बारह व्रत नित ठाने।१। चक्की उखरी, चूल्हि बुहारी, पानी त्रस न विराधै। बनिज करै, पर-द्रव्य हरै नहिं, छहों करम इमि साधै। पूजा-शास्त्र, गुरुनकी सेवा, संयम-तप, चहुँ-दानी। पर-उपकारी, अल्प-अहारी, सामायिक-

विधि-ज्ञानी ।२। जाप जपै, तिहुँ योग धरै दृढ़, तनुकी ममता टारै। अन्त समय वैराग्य सम्हारै, ध्यान-समाधि विचारै। आग लगै अरु नाव डुबै तब, धर्म-विघन जब आवै। चार प्रकार अहार त्यागिके, मंत्र सु मनमें ध्यावै ।३। रोग असाध्य, जरा बहु देखै, कारण और निहारै। बात बड़ी है जो बनि आवै, भार भवनको डारै। जो न बनै तो घरमें रहकर, सबसों होय निराला। मात-पिता सुत-तियको सौंपै, निज परिग्रह अहि-काला ।४। कछु चैत्यालय, कछु श्रावकजन, कछु दुखिया धन देई। क्षमा-क्षमा सब ही सों कहके, मनकी शल्य हनेई। शत्रुनसों मिल निज कर जोरै, मैं बहु कीनि बुराई। तुमसे प्रीतमको दुख दीने, ते सब बकसो भाई ।५। धन-धरती जो मुखसों माँगै, सो सब दे सन्तोषै। छहों कायके प्राणी ऊपर करुणा-भाव विशेषै। ऊँच-नीच घर बैठ जगह इक, कछु भोजन कछु पेऽ लै। दूधा-

धारी क्रम-क्रम तजिके छाछ अहार पहेलै ।६। छाछ त्यागिके पानी राखै, पानी तजि संथारा। भूमि माहिं थिर आसन माँड़ै, साधर्मी ढिंग प्यारा। जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनवाणी पढ़िये। यों कहिं मौन लियो संन्यासी, पंच परम पद गहिये ।७। चार अराधन मनमें ध्यावै, बारह-भावन भावै। दशलक्षण मन धर्म विचारै, रत्नत्रय मन लावै। पैंतिस सोलह षट पन चारों, दुइ इक वरन विचारै। काया तेरी दुखकी ढेरी, ज्ञानमयी तू सारै ।८। अजर-अमर निज गुणसों पूरै, परमानन्द सु भावै। आनँद-कन्द चिदानँद साहब, तीन जगतपति ध्यावै। क्षुधा-तृषादिक होय परीषह सहै, भाव सम राखै। अतीचार पाँचो सब त्यागै, ज्ञान - सुधारस चाखै ।९। हाड़-माँस सब सूखि जाय जब, धरम-लीन तन त्यागै। अद्भुत पुण्य उपाय सुरगमें, सेज उठै ज्यों जागै। तहँतैं

आवै, शिव-पद पावै, विलसै सुक्ख अनन्तो। 'द्यानत' यह गति होय हमारी, जैन-धरम जयवन्तो ।१०।

समाधि-मरण

[कविवर सूरचन्द-कृत 'बड़ा समाधि-मरण']

वन्दौं श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई। इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई। अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माहीं। अन्त समयमें यह वर माँगूँ, सो दीजै जग-राई ।१। भव-भवमें तन धार नये मैं, भव-भव शुभ सँग पायो। भव-भवमें नृप-रिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो। भव-भवमें तन पुरुष-तनो धर, नारी हू तन लीनो। भव-भवमें मैं भयो नपुंसक, आतम-गुन नहिं चीनो ।२। भव-भवमें सुर-पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे। भव-भवमें गति-नरक तनी धर, दुख पाये विधियोगे। भव-भवमें तिरयंच योनि धर,

पायो दुख अति भारी। भव-भवमें साधर्मी जनको, संग मिल्यो हितकारी ।३। भव-भवमें जिन-पूजन कीनी, दान सुपात्र हि दीनो। भव-भवमें मैं समव-सरनमें, देख्यो जिन गुन भीनो। एती वस्तु मिली भव-भवमें 'सम्यक'गुन नहिं पायो। ना समाधि-युत मरन कियो मैं, तातैं जग भरमायो ।४। काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कु-मरन हि कीनो। एक बार हू 'सम्यक' युत मैं, निज-आतम नहिं चीनो। जो निज-परको ज्ञान होय तो, मरन समय दुख काँई। देह विनासी, मैं निज-भासी, जोति-सरूप सदाई ।५। विषय-कषायनके वस ह्वैकें, देह आपनो जान्यो। कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो। यों कलेस हिय धार मरन करि, चारों गति भरमायो। सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदेमें नाहिं लायो ।६। अब यह अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरन समय यह माँगौं। रोग-

जनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागौ। ये मुझ मरन समय दुख-दाता, इन हर, साता कीजै। जो समाधि-युत मरन होय मुझ, अरु मिथ्या-गद छीजै ।७। यह तन सात कुधात-मयी है, देखत ही घिन आवै। चर्म-लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्ठा पावै। अति दुर्गन्ध अपावन सों यह मूरख प्रीति बढ़ावै। देह विनासी, जिय अविनासी, नित्य-सरूप कहावै ।८। यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, यातैं प्रीति न कीजै। नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै। मृत्यु होनसे हानि कौन है, याको भय मत लावो। समतासे जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ।९। मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं। जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं। या सेती इस मृत्यु समयपर, उत्सव ही अति कीजै। क्लेश-भावको त्याग सयाने, समता-भाव धरीजै ।१०। जो तुम पूरब

पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई। मृत्यु-मित्र विन कौन दिखावै, स्वर्ग-सम्पदा भाई। राग-रोषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई। अन्त समयमें समता धारो, पर-भव-पंथ सहाई ।११। कर्म महादुठ वैरी मेरो, ता सेती दुख पावै। तन-पिंजरमें बन्ध कियो मोहि यासों कौन छुड़ावै। भूख-तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढ़ै। मृत्यु-राज अब आय दया कर, तन-पिंजरसों काढ़ै ।१२। नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये। गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये। रात-दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी। सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ।१३। मृत्यु-रायको सरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ। जामें सम्यक-रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ। देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जग माहीं। मृत्यु

समयमें ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ।१४। यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुरगति-दाता। इनसे मोह निवारो जियरा, जो चाहो सुख-साता। मृत्यु-कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती। समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पति तेती ।१५। चौ-आराधन सहित प्रान तज, तौ ये पदवी पावो। हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग-मुकतिमें जावो। मृत्यु-कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे। ताको पाय कलेस करो मत, जन्म-जवाहर हारे ।१६। इस तनमें क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन होहै। तेज-कान्ति-बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ! पाँचो इन्द्री शिथिल भईं अब, साँस शुद्ध नहिं आवै। तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै ।१७। मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावै। नातर या तन बन्दी-गृहमें, पड़ौ-पड़ौ बिललावै। पुदूगलके

परमानू मिलकें, पिण्ड-रूप तन भासी।
ये तो मूरत, मैं हूँ अमूरत, ज्ञान-जोति गुन
खासी ।१८। रोग-शोक आदिक जे वेदन,
ते सब पुद्गल लारे। मैं तो चेतन
व्याधि-बिना निन, हैं सो भाव हमारे।
या तनसों इस क्षेत्र-सँबन्धी, कारन आन
बन्यो है। खान-पान दे याको पोस्यो,
अब सम-भाव ठन्यो है ।१९। मिथ्या-
दर्शन, आत्म-ज्ञान बिन, यह तन अपनो
जान्यो। इन्द्री-भोग गिने सुख मैंने,
आपो नाहिं पिछान्यो। तन विनसनतैं
नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदिको अपनो जान्यो, भूल
अनादी छाई ।२०। अब निज भेद जथारथ
समझो, मैं हूँ जोति-सरूपी। उपजै-
विनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको
रूपी। इष्टऽनिष्ट जेते सुख-दुख हैं, सो
सब पुद्गल सागैं। मैं जब अपनो रूप
विचारों, तब ये सब दुख भागैं ।२१। बिन
समता तन ऽनन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख

पायो। शस्त्र-घाततैं ऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो। बार अनन्त हि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो। सिंह व्याघ्र अहि ऽनन्त बार मुझ, नाना दुक्ख दिखायो।२२। बिन समाधि ये दुक्ख लहे मैं, अब उर समता आई। मृत्यु-राजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई। यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै। जप-तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी नहिं सीजै।२३। स्वर्ग-सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै। तप ही सों शिव-कामिनि-पति है, यासों तप चित लावै। अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई। मात-पिता सुत-बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई।२४। मृत्यु समयमें मोह करें ये, तातैं आरत हो है। आरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है। और परिग्रह जेते जगमें, तिनसों प्रीत न कीजै। पर-भवमें ये संग न चालैं, नाहक आरत

कीजै ।२५। जे-जे वस्तु लखत हैं, ते पर, तिनसों नेह निवारो। पर-गतिमें ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो। जो पर-भवमें संग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै। पंच पाप तज, समता धारो, दान चार विध दीजै ।२६। दशलक्षण-मय धर्म धरो हिय, अनुकम्पा उर लावो। षोड़शकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो। चारों परवी प्रोषध कीजै, असन रातको त्यागो। समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ।२७। अन्त समयमें यह शुभ भाव हि, होवें आन सहाई। स्वर्ग-मोक्ष-फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई। खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके। जा सेती गति-चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाके ।२८। मन थिरता करके तुम चिन्तो, चौ-आराधन भाई। ये ही तोकों सुखकी दाता, और हितु कोउ नाहीं। आगें बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।

बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उर धारी।२९। तिनमें कछुइक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाके। भाव-सहित अनुमोदै जो जन, दुर्गति होय न ताके। अरु समता निज उरमें आवे, भाव अधीरज जावे। यों निश-दिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच लावे।३०।

● धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी। एक स्यालिनी जुग बच्चा-जुत, पाँव भख्यो दुखकारी। यह उपसर्ग सह्यो धरि थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३१। धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो। तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो। यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३२। देखो गज-मुनिके सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी। सीस जलै जिम

लकड़ी-तिनको, तौ हू नाहिं चिगारी। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३३। सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ठ-वेदना व्यापी। छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुन आपी। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३४। श्रेणिक-सुत गंगामें डूब्यो, तब 'जिन' नाम चितारो। धर सलेखना परिग्रह छोड़्यो, शुद्ध भाव उर धारो। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३५। समँतभद्र मुनिवरके तनमें, छुधा-वेदना आई। ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यो निज-गुन भाई। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३६।

ललितघटादिक तीस-दोय मुनि, कोसाम्बी-तट जानो। नदीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३७। धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो। एक मासकी कर मर्यादा, तृषा-दुक्ख सह गाढ़ो। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३८। श्रीदत्त मुनिको पूर्व-जन्मका, वैरी देव सु आके। विक्रिय कर दुख शीत-तनो जो, सह्यो साधु मन लाके। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।३९। वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई। सूर्य-घाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई। यह उपसर्ग सह्यो धर

थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४०। अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महा वेदना पाई। बैरी चंडने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४१। विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी। शुभ भावनसों प्रान तजे निज, धन्य और बड़भागी। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४२। पुत्र-चिलाती नामा मुनिको, बैरीने तन घाता। मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज-गुन राता। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४३। दंडक नामा मुनिकी देही, बानन कर अरि भेदी।

तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म-महारिपु छेदी। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४४। अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे। तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरब कर्म विचारे। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४५। चाणक मुनि गौ-घरके माहीं, मूँद अगिनि परजाल्यो। श्रीगुरु उर सम-भाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४६। सात शतक मुनिवर दुख पायो, हथिनापुरमें जानो। बलि ब्राह्मण-कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे

जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी ।४७। लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये। पाँचों पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये। यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।४८। और अनेक भये इस जगमें, समता-रसके स्वादी। वे ही हमकों हों सुखदाता, हरिहैं टेव प्रमादी। सम्यक-दर्शन-ज्ञान-चरन तप, ये आराधन चारों। ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हें सदा उर धारों ।४९। यों समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो। तजि ममता अरु आठों मदको, जोति-सरूपी ध्यावो। जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तरके काजै। सो भी सगुन विचारे नीके, शुभके कारन साजै ।५०। मात-पितादिक सर्व कुटुम मिलि, नीके सगुन बनावैं। हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूध दही फल लावैं। एक ग्राम जावनके कारन, करें

शुभाशुभ सारे। जब पर-गतिको करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे।८१। सर्व कुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावें सारे। ये अपसगुन करें सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे। अब पर-गतिको चालन बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो। चारों आराधन आराधो, मोह-तनो दुख हानो।८२। होय निःशल्य तजो सब दुबिधा, आतम-राम सुध्यावो। अब पर-गतिको करहु पयानो, परम-तत्त्व उर लावो। मोह-जालको काटो प्यारे, अपनो रूप विचारो। मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो।८३।

'मृत्यु-महोत्सव-पाठ' को, पढ़ें-सुनें बुधिवान ;
सरधा धर नित सुख लहें, 'सूरचन्द' शिव-थान।
पंच उभय नव एक शुभ, संवत सो सुखदाय ;
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय।

निर्वाण-कांड

वीतराग बन्दौं सदा, भाव-सहित सिर नाय ;
कहूँ 'काण्ड-निर्वाण' की, भाषा सुगम बनाय ।

अष्टापद आदीश्वर स्वामि ; वासुपूज्य चम्पापुर नामि । नेमिनाथ स्वामी गिरनार ; बन्दौं भाव-भगति उर धार ।२। चरम तीर्थंकर चरम शरीर ; पावापुर स्वामी महावीर । शिखर-समेद जिनेसुर बीस ; भाव-सहित बन्दौं निश-दीस ।३। वरदत-राय ऽरु इन्द मुनिन्द ; सागरदत्त आदि गुणवृन्द । नगर तारवर मुनि उठ कोड़ि ; बन्दौं भाव-सहित कर जोड़ि ।४। श्री गिरनार-शिखर विख्यात ; कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात । सम्बु प्रद्युम्नकुमर द्वै भाय ; अनिरुध आदि नमूँ तसु पाय ।५। रामचन्द्रके सुत द्वै वीर ; लाड-नरेन्द्र आदि गुण-धीर । पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार ; पावागिरि बन्दौं निरधार ।६। पांडव तीन द्रविड़ राजान ; आठ कोड़ि मुनि मुक्ति पयान । श्री शत्रुंजय गिरिके सीस ;

भाव-सहित बंदौं निश-दीस।७। श्रीबलभद्र मुकतिमें गये; आठ कोड़ि मुनि औरहु भये। श्री गजपंथ-शिखर सुविशाल; तिनके चरन नमूँ तिहुँकाल।८। राम हनू सुग्रीव सुडील; गव-गवाख्य नील महा-नील। कोड़ि निन्यानव मुक्ति पयान; तुंगीगिरि बन्दौं धरि ध्यान।९। नंग अनंग कुमार सुजान; पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान। मुक्ति गये सोनागिरि सीस; ते बन्दौं त्रिभुवनपति ईस।१०। रावणके सुत आदिकुमार; मुक्ति गये रेवा-तट सार। कोटि पंच अरु लाख पचास; ते बन्दौं धरि परम हुलास।११। रेवा-नदी सिद्धवर कूट; पश्चिम दिशा देह जहँ छूट। द्वै चक्री दश कामकुमार; ऊँठ कोड़ि बन्दौं भव-पार।१२। बड़वानी बड़नयर सुचंग; दक्षिण दिशि गिरि-चूल उतंग। इन्द्रजीत अरु कुम्भ-सु-कर्ण; ते बन्दौं भव-सायर तर्ण।१३। सुवरणभद्र आदि मुनि चार; पावागिरिवर शिखर मँझार। चेलन

नदी-तीरके पास; मुक्ति गये बन्दौं नित तास ।१४। फलहोड़ी बड़गाम अनूप; पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप। गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ; मुक्ति गये बन्दौं नित तहाँ ।१५। बाल ऽरु महाबाल मुनि दोय; नागकुमार मिले त्रय होय। श्रीअष्टापद मुक्ति-मँझार; ते बन्दौं नित सुरत सँभार ।१६। अचलापुरकी दिश ईसान; तहाँ मेढ़्गिरि नाम प्रधान। साढ़े-तीन कोड़ि मुनिराय; तिनके चरन नमूँ चित लाय। ।१७। वंसस्थल-वनके ढिंग होय; पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय। कुलभूषण दिश-भूषण नाम; तिनके चरनन करूँ प्रणाम ।१८। जसरथ राजाके सुत कहे; देश कलिंग पाँच सौ लहे। कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान; वन्दन करूँ जोर जुग-पान ।१९। समवसरण श्री पार्श्व जिनन्द; रेसन्दीगिरि नयनानन्द। वरदत्तादि पंच ऋषिराज; ते बन्दौं नित धरम-जिहाज।२०।

---

१ साढ़े तीन करोड़। २ वर्तमान एलिचपुर।

तीन लोकके तीरथ जहाँ; नितप्रति बन्दन कीजै तहाँ। मन-वच-काय सहित सिर नाय; बन्दन करहिं भविक गुन गाय।२१।

संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल;
'भैया' बंदन करहिं त्रिकाल, जय 'निर्वाण-कांड' गुणमाल।

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक
जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्ष-मार्गका
निस्पृह हो उपदेश दिया;
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा
या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भावसे प्रेरित हो यह
चित्त उसीमें लीन रहो।१
विषयोंकी आशा नहिं जिनके,
साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हित-साधनमें जो
निश-दिन तत्पर रहते हैं;

स्वार्थ-त्यागकी कठिन तपस्या
बिना-खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके
दुख-समूहको हरते हैं।२

रहे सदा सत्संग उन्हींका,
ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उन ही जैसी चर्यामें यह
चित्त सदा अनुरक्त रहे।

नहीं सताऊँ किसी जीवको,
झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
पर-धन-वनितापर न लुभाऊँ,
सन्तोषामृत पिया करूँ।३

अहंकारका भाव न रक्खूँ,
नहीं किसीपर क्रोध करूँ,
देख दूसरों की बढ़ती को
कभी न ईर्षा-भाव धरूँ;

रहे भावना ऐसी मेरी,
सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवनमें
औरोंका उपकार करूँ।४

मैत्री - भाव जगतमें मेरा
सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन - दुखी जीवोंपर मेरे
उरसे करुणा - स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्ग - रतोंपर
क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उनपर,
ऐसी परिणति हो जावे।५

गुणी - जनोंको देख हृदयमें
मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा
करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं,
द्रोह न मेरे उर आवे,
गुणःग्रहणका भाव रहे नित
दृष्टि न दोषोंपर जावे।६

कोई बुरा कहो या अच्छा,
लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षों तक जीऊँ या
मृत्यु आज ही आ जावे;

अथवा कोई कैसा ही भय
या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्गसे मेरा
कभी न पद डिगने पावे ।७

होकर सुखमें मग्न न फूले,
दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-मसान भयानक
अटवीसे नहिं भय खावे;
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर
यह मन दृढ़तर बन जावे,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योगमें
सहनशीलता दिखलावे ।८

सुखी रहें सब जीव जगतके
कोई कभी न घबरावे,
वैर-भाव अभिमान छोड़ जग
नित्य नये मंगल गावे।
घर-घर चर्चा रहे धर्मकी,
दुष्कृति दुष्कर हो जावे,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना
मनुज-जन्म-फल सब पावे ।९

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें,
वृष्टि समयपर हुआ करे,
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी
न्याय प्रजाका किया करे;
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले,
प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगतमें
फैल सर्व-हित किया करे।१०

फैले प्रेम परस्पर जगमें,
मोह दूर ही रहा करे,
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं
कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युगवीर' हृदयसे
आत्मोन्नति-रत रहा करें,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशीसे
सब दुख-संकट सहा करें।११

महावीराष्टक

[पं० गजाधरलाल-कृत पद्यानुवाद]

जिन्होंकी प्रज्ञामें मुकुर-सम चैतन्य जड़ भी; स्थिती ध्रौव्योत्पत्ती-युत झलकते साथ सब ही। जगत-ज्ञाता, ज्ञान प्रकट-करता सूर्य-सम जो; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ।१। जिन्होंके दो चक्षू पलक अरु लाली-रहित हों; जनोंको दर्शाते हृदयगत क्रोधातिलयको। जिन्होंकी शान्तात्मा अति विमल मूर्ति स्फुट महा; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ।२। नमन्ते इन्द्रोंके मुकुट-मणिकी कान्ति धरता; जिन्होंके चरणोंका युग ललित संतप्त जनको। भवाग्नीका हर्ता, स्मरण करते ही सुजल है; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ।३। जिन्होंकी पूजासे मुदित-मन हो मेढ़क जबै; हुआ स्वर्गी, ताही समय गुणधारी अति सुखी। लहैं जो मुक्तीके सुख भगत, तो विस्मय कहा! महावीरस्वामी, दरश हमको दें

प्रकट वे ।४। तपे सोने ज्यों भी, रहित वपुसे, ज्ञान-गृह हैं; अकेले नाना भी, नृपतिवर सिद्धार्थ-सुत हैं। न जन्मे भी श्रीमान्, भव-रत नहीं अद्भुत गती; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रकट वे ।५। जिन्होंकी वाग्गंगा अमल नय-कल्लोल धरती; न्हवाती लोगोंको सुविमल महा ज्ञान-जलसे। अभी भी सेते हैं बुधजन महाहंस जिसको; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ।६। त्रिलोकीका जेता मदन-भट जो दुर्जय महा; युवावस्थामें भी वह दलित कीना स्व-बलसे। प्रकाशी मुक्तीके, अति सु-सुखदाता जिन विभू; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ।७। महामोह-व्याधी, हरण करता वैद्य सहज; बिना-इच्छा बन्धू, प्रथित जग कल्याण-करता। सहारा भव्योंको सकल जगमें उत्तम गुणी; महावीरस्वामी, दरश हमको दें प्रगट वे ।८।

संस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचन्द रुचिवान;
तस भाषा अनुवाद यह, पढ़ि पावै निर्वान।

अध्यात्म-पदावली

[१]

लखौ जी, या जिय भोरेकी बातैं, नित करत अहित, हित घातैं। टेक। जिन, गनधर, मुनि, देशव्रती, समकिती सुखी नित जातैं। सो पय-ज्ञान न पान करत, न अघात विषय-विष खातैं। लखौ जी।१। दुख-स्वरूप दुख-फलद जलद-सम, टिकत न छिनक विलातैं। तजत न जगत, न भजत, पतित नित, रचत, न फिरत तहाँतैं। लखौ जी।१। देह-गेह-धन-नेह ठान अति, अघ संचत दिन-रातैं। कुगति विपति-फलकी न भीति, निश्चिन्त प्रमाद-दशातैं। लखौ जी।३। कबहुँ न होय आपनो पर,-द्रव्यादि पृथक् चतुधातैं। पै अपनाय लहत दुख शठ नभ हतन चलावत लातैं। लखौ जी।४। शिव-गृह-द्वार सार नर-भव यह, लहि दस दुर्लभतातैं। खोवत ज्यों मनि काग उड़ावत, रोवत रंकपनातैं। लखौ जी।५। चिदानन्द

निर्द्वन्द्व स्वपद, तजि, अपद-विपद-पद रातैं। कहत सुसिख गुरु, गहत नहीं उर, चहत न सुख समतातैं। लखौ जी ।६। जैन-बैन सुनि भवि बहु भव हर, छूटे द्वन्द्व-दशातैं। तिनकी सुकथा सुनत न, गुनत न, आतम-बोध-कलातैं। लखौ जी ।७। जे जन समुझि ज्ञान-दृग-चारित, पावन पय-वर्षातैं। ताप-विमोह हरो, तिनको जस, 'दौल' त्रिभोन विख्यातैं। लखौ जी या जिय भोरेकी बातैं ।८।

[२]

हे मन, तेरी को कुटेव यह, करन-विषयमें धावै है। टेक। इन ही के वश तू अनादितैं, निज-स्वरूप न लखावै है। पराधीन छिन छीन समाकुल, दुरगति-विपति चखावै है। हे मन ।१। फरस-विषयके कारन वारन, गरत परत दुख पावै है। रसना इन्द्री-वश झष जलमें, कंटक कंठ छिदावै है। हे मन ।२। गंध-लोल पंकज मुद्रितमें, अलि निज प्रान गमावै है। नयन-विषय

वश दीप-शिखामें, अंग पतंग जरावै है। हे मन।३। करन-विषय-वश हिरन अरनमें, खल-कर प्रान लुनावै है। 'दौलत' तज इनको, जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है। हे मन, तेरी को कुटेव यह, करन-विषयमें धावै है।४।

[३]

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ; ज्यों शुक नभ-चाल विसरि, नलिनी लटकायौ। टेक। चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश-बोधमय विशुद्ध; तजि जड़-रस-फरस रूप, पुद्गल अपनायौ। अपनी।१। इन्द्रिय-सुख-दुखमें नित्त, पाग राग-रुखमें चित्त; दायक भव-विपति-वृन्द, बन्धको बढ़ायौ। अपनी।२। चाह-दाह दाहै, त्यागौ न ताहि चाहै; समता-सुधा न गाहै, जिन निकट जो बतायौ। अपनी।३। मानुष-भव सुकुल पाय, जिनवर-शासन लहाय; 'दौल' निज-स्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ। अपनी सुधि भूलि आप, आप दुख उपायौ।४।

[४]

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै, जाको जिनवानी न सुहावै। ऐसा मोही। टेक। वीतराग-से देव छोड़कर, भैरव यक्ष मनावै। कल्प-लता दयालुता तजि, हिंसा-इन्द्रायनि बावै। ऐसा मोही ।१।

पृष्ठ १९८, १९९ और २०० की टिप्पणियाँ :—

[१] प्रमाद-दशा=क्रोध-मान-माया-लोभ ये ४ कषाय, स्त्री-राष्ट्र-भोजन-राज ये ४ विकथा, पंचेन्द्रियके ५ विषय, निद्रा और स्नेह इन पन्द्रह बाधक (या आत्म-घातक) प्रमादोंके नशेमें बेहोशीकी हालत। चतुधातैं=द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चारों प्रकारसे। दस दुर्लभता=निगोद (एक-इन्द्रिय दशा) से निकलकर मनुष्य-गति तक (क्रमोन्नति करनेमें) पूर्ण-इन्द्रिय और स-मन होने तककी दस दुर्लभ-अवस्थाएँ, जिनके सुलभ होनेपर तब कहीं "दुर्लभ है संसारमें एक जथारथ ज्ञान"—यथार्थ या सच्चा ज्ञान—सुलभ करनेका मौका हाथ आता है। आतम-बोध-कलातैं=आत्मानुभूतिकी कलासे। (इसकी गहराई और सार्थकतापर जरा गहरा विचार तो कीजिये।)

[२] करन-विषय=इन्द्रियोंके विषय। फरस=स्पर्श-इन्द्रिय। वारन=हाथी। झष=मछली। गन्ध-लोल=खुशबूका लोभी। पंकज मुद्रितमें=कमल बन्द हो जानेकी हालतमें। खल=दुष्ट या शिकारी। खुनावै है=गँवाता है।

[३] नलिनी=चिड़ीमार या बहेलियोंके गिरीदार 'कम्पा' में ऊपर लगी हुई गिरीं। नभ-चाल=आकाश (उड़ने) की चाल। राग-दन्द=राग-द्वेष।

रुचै न गुरु निर्ग्रन्थ[1]-भेष, बहु-परिग्रही गुरु भावै। पर-धन पर-तियको अभिलाषै, अशन[2] अशोधित खावै। ऐसा मोही ।२। परको विभव देख है सोगी, पर-दुख हरष लहावै। धर्म-हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष[3] बहावै। ऐसा मोही ।३। जो गृहमें संचय बहु अघ तौ, बन हू में उठ जावै। अम्बर त्याग, कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै। ऐसा मोही ।४। आरँभ[4] तज, शठ यंत्र-मंत्र करि, जनपै पूज्य मनावै। धाम वाम तज, दासी राखै, बाहर मढ़ी बनावै। ऐसा मोही ।५।

---

(१) निर् (नहीं)+ग्रन्थ (गाँठ)=जिसके गाँठ (परिग्रह या मूर्च्छा) नहीं, अनासक्त, दिगम्बर। (२) भोजन-पान। (३) बाग-बगीचोंके फालतू शौकमें लाखों रुपये पानीकी तरह बहा देता है, जो उसके मरनेके पीछे सन्तान-सन्तति द्वारा नीलाम होती फिरती है। (४) सांसारिक, गार्हस्थिक या दैहिक आवश्यकता और आकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए की गई क्रियाएँ या कोशिशें। भाव यह है कि 'मूर्ख आरम्भोंको तो छोड़ देता है और साधु-सा बनकर मन्त्र-तंत्रोंसे (यानी अमलोंसे दूसरोंको प्रभावित कर) लोकमें अपनी पूज्यता बढ़ानेमें लग जाता है।

नाम धराय जती तपसी, मन विषयनमें लझचावै। 'दौलत', सो अनन्त भव भटकै, औरनको भटकावै। ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै, जाहि जिनवानी सुहावै।६।

[५]

आपा[1] नहिं जाना तूने, कैसा ज्ञानधारी रे।टेक। देहाश्रित कर क्रिया, आपको मानत शिव-मगचारी[2] रे। आपा।१। निज-निवेद[3] बिन घोर परीसह[4], विफल कही 'जिन' सारी रे। आपा।२। शिव चाहै तो द्विविध[5] कर्मतैं, कर निज-परनति न्यारी रे। आपा।३। 'दौलत', जिन निज-भाव पिछान्यौ, तिन भव-विपति विदारी रे। आपा नहिं जाना तूने।४।

(१) आत्माको यानी अपना स्वरूप। (२) मोक्षमार्गी। (३) निज=आत्मा। नि (उपसर्ग)=सम्यक्; वेद=ज्ञान। निज-निवेद=आत्माका सम्यक् रूप ज्ञान। (निवेदन करना=जताना; निवेद होना=जानना) निज-निवेद बिन=अपनेको जाने बिना। (४) परि-सहन, परीषह=सम्पूर्णतः सहन, समता-पूर्वक भलीभाँति सह लेना। भावार्थ—आत्म-ज्ञानके बिना घोर परिषह (कष्ट-सहन) व्यर्थ ही जाता है। (५) भाव-कर्म और द्रव्य-कर्म।

[६]

चिन्मूरत-दृग[1]धारीकी मोहि रीति लगत है अटापटी। चिन्मूरत ।टेक। बाहिर नारकि-कृत दुख भोगै, अन्तर सुख-रस गटागटी। रमत अनेक सुरनि सँग, पै तिस परनतितैं नित हटाहटी। चिन्मूरत ।१। ज्ञान-विराग[2]-शक्तितैं विधि-फल[3] भोगत, पै विधि घटाघटी। सदन-निवासी, तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी। चिन्-मूरत ।२। जे भव-हेतु अबुध[4]के, ते तस करत बन्धकी झटाझटी। नारक-पशु-तिय-षंड[5] विकलत्रय[6] - प्रकृतिनकी ह्वै कटाकटी।

---

(१) आत्म-दृष्टि-धारक, सत्य-द्रष्टा। (२) भेद-ज्ञानसे उत्पन्न वीतराग-शक्ति, राग-द्वेष-वर्जित आत्म-शक्ति। (३) कर्म-फल। भावार्थ—कर्मफलसे प्राप्त सुख-दुःख। (४) बुध, बुद्ध=बोधि-ज्ञान-धारी। अ-बुध=अ-बुद्ध; बोधि-ज्ञान-हीन, असत्य ज्ञाता-द्रष्टा। (५) षंड=नपुंसक। (६) विकल=असपूर्ण (अपर्याप्त) त्रय=तीन। दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय और चार-इन्द्रिय इन तीन प्रकारके त्रस-जीवोंकी समष्टि। भावार्थ—सम्यक्‌दृष्टिके (सम्पूर्ण सत्य द्रष्टा-ज्ञाताके) ऐसा कर्म-बन्ध नहीं होता, जिससे वे नरक-गति, पशु-गति, स्त्री-पर्याय, नपुंसक पर्याय और विकलत्रयमें जन्म लें। अर्थात् वे मरनेके बाद या तो मनुष्य-गतिमें पुरुष होते हैं या देवगतिमें देव होते हैं।

चिन्मूरत ।३। संयम धर न सकै, पै संयम धारनकी उर[1] चटाचटी । तासु सुयश-गुनकी 'दौलत'के, लगी रहै नित रटारटी । चिन्मूरत-दृगधारीकी मोहि रीति लगत है अटापटी ।४।

[७]

हम तो कबहूँ न हित उपजाये । सुकुल, सुदेव, सुगुरु, सुसंग हित-कारण पाय गमाये । हम तो ।१। ज्यों शिशु नाचत, आप न माचत[2], लखनहार बौराये । त्यों श्रुत[3] बाँचत, आप न राचत, औरनको समुझाये । हम तो ।२। सुजस-लाहँ[4]की चाह न तज, निज-प्रभुता लखि हरषाये । विषय तजे न रचे निज-पदमें, पर-पद अपद लुभाये । हम तो ।३। पाप त्याग, जिन-जाप न कीन्हीं, सुमन-चाप[5] तप ताये । 'चेतन' 'तन'को कहत भिन्न, पर

---

(१) हृदयमें, मनमें । (२) न माचत=मग्न नहीं होते । (३) शास्त्र । (४) लाभ, प्राप्ति । (५) सुमन-चाप=काम-बाणके, तप-ताये=तपनमें तपे ; अर्थात् काम-दुःखसे जर्जरित हुए ।

देह-सनेही थाये। हम तो।४। यह चिर भूल भई हमरी, अब कहा होत पछताये! 'दौल', अजौं भव-भोग रचौ मत, यों गुरु बचन सुनाये। हम तो कबहुँ न।५।

[८]

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी। मान ले। टेक। भोग भुजंग-भोग[१] सम जानो, जिन इनसे रति जोरी। ते अनन्त भव भीम[२] भरे दुख, परे अधोगति पोरी[३]; बँधे दृढ़ पातक-डोरी। मान ले।१। इनको त्याग विरागी जे जन भये ज्ञान-वृष-धोरी[४]। तिन सुख लह्यो अचल अविनाशी, भव-फाँसी दई तोरी; रमै तिन सँग शिव-गोरी[५]। मान ले।२। भोगनकी अभिलाष हरनको त्रि-जग

---

(१) साँपका फन। (२) भयंकर। (३) पौरी=पैड़ी, सीढ़ी या ड्योढ़ी। अधोगतिकी पैड़ी द्वारा पतन या अधोगतिकी ड्योढ़ीमें प्रवेश। (४) ज्ञान-वृष=ज्ञान-धर्म; धोरी='धौरेय', धुरेका धारक (धनी-धोरी); अर्थात् ज्ञान-धर्म-धुरन्धर। (५) मुक्ति-लक्ष्मी। निष्कलंक निरंजन मुक्तात्माका अनन्त सुख।

सम्पदा थोरी। यातैं ज्ञानानन्द 'दौल' अब पियौ पियूष-कटोरी; मिटै भव-व्याधि कठोरी। मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी।३।

[९]

छाँड़ि दे या बुध भोरी, वृथा तनसों रति जोरी। छाँड़ि दे ।टेक। यह पर है, न रहै थिर पोषत, सकल कु-मलकी झोरी। यासों ममता कर अनादितैं, बँध्यो करमकी डोरी; सहै दुख-जलधि हिलोरी। छाँड़ि दे या बुधि भोरी। वृथा ।१। यह जड़ है, तू चेतन, यों ही अपनावत बरजोरी। सम्यक दरसन-ज्ञान-चरन[1] निधि, ये हैं सम्पति तोरी; सदा बिलसौ शिव-गोरी। छाँड़ि दे या बुधि भोरी। वृथा ।२। सुखिया भये सदीव जीव जिन यासों ममता तोरी। 'दौल' सीख यह लीजे, पीजे ज्ञान-पियूष कटोरी;

(१) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र=सम्पूर्ण सत्य दर्शन (आत्म-दर्शन और आत्म-विश्वास) सत्य ज्ञान और तदनुरूप सत्य आचरण।

मिटै पर-चाह कठोरी। छाँड़ि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसों रति जोरी।३।

[१०]

आकुल-रहित होय इमि निश-दिन, कीजे तत्त्व विचारा हो। टेक। को मैं, कहा रूप है मेरा[1], पर[2] है कौन प्रकारा हो। आकुल-रहित होय।१। को भव-कारन[3], बन्ध[4] कहा, को आस्रव रोकन-हारा[5] हो। खिपत कर्म-बन्धन[6] काहेसों, थानक[7] कौन हमारा हो। आकुल-रहित होय।२। इमि अभ्यास

---

(१) मैं आत्मा हूँ, ज्ञान-रूप है मेरा (जीवतत्त्व)। (२) अजीव-तत्त्व। (३) आस्रव-तत्त्व। (४) वन्ध। (५) सवर। (६) निर्जरा। (७) मोक्ष। इन सात तत्त्वोंके अर्थका विश्लेषण-पूर्वक विचार करनेका नाम ही 'स्वाध्याय' है। मुझ जीव-तत्त्वके लिए अजीव-तत्त्व कैसा घातक है, घातक आस्रव और बन्ध कैसे रुकें, (तब सवर हो), जो मौजूद हैं, वे कैसे दूर (निर्जरा) हों और कैसे मैं शुद्ध परमात्मा होऊ (मोक्ष) इत्यादि विचार-धारा या तत्त्वोंका मनन, मथन और विश्लेषण करना ही सच्चे और सम्पूर्ण अर्थोंमें 'स्वाध्याय' (स्व-अध्याय=स्वाध्याय; स्व=आत्मा; अध्याय=अध्ययन; अर्थात् अपना अध्ययन या अपनेको जानना) है; और वह निराकुल और निश्चिन्त अवस्थामें, शुद्ध और शान्त बुद्धिसे, निर्मल मन और शुद्ध भावसे किया जाना चाहिए। अतः प्रातःकाल ही इसके लिए ठीक या उपयुक्त समय है।

कियें पावत है परमानन्द अपारा हो।
'भागचन्द' यह सार जानकर, कीजे
बारम्बारा हो। आकुल-रहित होय इमि
निश-दिन, कीजे तत्त्व विचारा हो।३।

[११]

जीव, तू भ्रमन सदीव अकेला, सँग-साथी
कोई नहीं तेरा।टेक। अपना सुख-दुख
आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला।
स्वार्थ भयैं सब बिछुरि जात हैं, विघट
जात ज्यों मेला। जीव तू।१। रक्षक
कोई न पूरन ह्वै जब, आयु अन्तकी बेला।
फूटत पारि बँधत नहिं, जैसें दुद्धर जलको
ठेला। जीव तू।२। तन-धन-जीवन
विनश जात, ज्यों इन्द्रजालका खेला।
'भागचन्द' इमि लखि करि भाई, हो
सद-गुरुका चेला। जीव, तू भ्रमत सदीव
अकेला।३।

(१) विषय छोड़कर निरारम्भ हो, नहीं परिग्रह रक्खें पास ;
ज्ञान-ध्यान-तपमें रत होकर, सब प्रकारकी छोड़ें आस ;
ऐसे ज्ञान-ध्यान-तप-भूषित, होते जो साँचे मुनिवर ;
वही सुगुरु हैं, वही सुगुरु हैं, वही सुगुरु हैं उज्ज्वलतर।

[१२

परनति[1] सब जीवनकी, तीन भाँति वरनी।
एक पुन्य, एक पाप, एक राग-हरनी।टेक।
तामें शुभ-अशुभ अन्ध, दोय करैं कर्म-बन्ध; वीतराग-परनति ही भव-समुद्र-तरनी। परनति।१। जावतें[2] शुद्धोपयोग पावत नाहीं मनोग; तावत ही करन-जोग[3] कही पुन्य-करनी। परनति।२। त्याग शुभ क्रिया-कलाप, करो मत कदाच पाप; शुभमें न मगन होय शुद्धता विसरनी। परनति।३। ऊँच-ऊँच दशा धारि, चित प्रमादको विडारि; ऊँचली दशातैं मति गिरो अधो-धरनी। परनति।४।

---

(१) परिणाम=मानसिक भावधारा ; परिणति=मानसिक भाव-धाराका परिणमन या क्रमशः रूपान्तरित अवस्थाएँ। भावोंकी परिणति तीन प्रकारकी हैं—पाप-भाव, पुण्य-भाव और राग-द्वेष-हीन आत्मस्थ भाव। पाप-परिणति और पुण्य-परिणति दोनों ही संसार बढ़ानेवाली हैं ; और 'राग-हरनी' वीतराग-परिणति 'भव-समुद्र-तरनी' अर्थात् मोक्षका साधन है। शुरूकी दो परिणति हेय हैं और अन्तकी वीतराग-परिणति उपादेय। (२) जब तक। (३) करने योग्य।

'भागचन्द', या प्रकार जीव लहै सुख अपार; जाके निरधार स्यादवादकी उचरनी। परनति सब जीवनकी तीन भाँति बरनी।५।

[१३]

साँची तो गंगा यह वीतराग[1] - वानी, अविच्छिन्न धारा निज-धर्मकी कहानी।टेक। जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान-पानी; जहाँ नहीं संशयादि[2] पंककी निशानी। साँची तो।१। सप्तभंग[3] जहँ तरंग उछलत सुख-दानी; सन्त-चित मराल[4]वृन्द रमैं नित्य ज्ञानी। साँची।२। जाके अवगाहन[5]तैं शुद्ध होय प्रानी; 'भागचन्द' निहचै घट माहिं या प्रमानी। साँची तो गंगा।३।

---

(१) वीतराग-वाणी=उसकी वाणी जिसमें राग-द्वेष न हो; सम्यक् या सत्य ज्ञान। अर्थात् वीतराग सर्वज्ञकी उपदेश-धारा ही सच्ची गंगा है, जिसमें आत्म-स्वरूपकी अविच्छिन्न धारा या आत्माकी ही कहानी है। (२) संशय आदि दोषोंकी कीच उसमें नहीं है, अर्थात् सत्य है। (३) स्याद्वाद। (४) हंस। (५) नहानेसे; अर्थात् सम्यग्ज्ञानमें डुबकी लगाकर स्नान करनेसे प्राणी शुद्ध हो जाते हैं।

[१४]

अज्ञानी, पाप-धतूरा[1] न बोय ।टेक। फल चाखनकी बार भरै दृग[2], मरिहै मूरख रोय। अज्ञानी ।१। किंचित् विषयनिके[3] सुख-कारन दुर्लभ देह न खोय। ऐसा अवसर फिर न मिलैगा, इस नींदड़ी न सोय। अज्ञानी ।२। इस विरियाँमें[4] धर्म-कल्प-तरु सींचत स्याने लोय। तू विष बोवन लागत, तो सम और अभागा कोय ! अज्ञानी ।३। जे जगमें दुखदायक वेरस[5]. इस ही के फल सोय। यों मन 'भूधर' जानिके भाई, फिर क्यों भोंदू होय ! अज्ञानी, पाप-धतूरा न बोय ।४।

[१५]

रे कोई अजब तमासा, देखा बीच जहान रे, जोर तमासा, सुपनेका-सा ।टेक। एकौंके घर मंगल गावैं, पूगी[6] मनकी

(१) अपने मनकी जमीनमें पाप-रूपी धतूरेका बीज मत बो।
(२) आँखें। (३) नश्वर शरीरके नश्वर भोग-विलास।
(४) इस वक्त। (५) निस्सार। (६) पूरी हुई।

आसा। एक वियोग-भरे बहु रोवैं, भरि-भरि नैन निरासा। रे कोई अजब तमासा।१। तेज तुरंगनिपै चढ़ि चलते, पहिरैं मलमल खासा। रंक भये नागे अति डोलैं, ना कोई देय दिलासा। रे कोई।२। तरकैं[1] राज-तखतपर बैठा था खुशवख्त खुलासा। ठीक दुपहरी मुद्दत आई, जंगल कीना बासा। रे कोई।३। तन-धन अथिर निहायत जगमें, पानी माहिं पतासा[2]। 'भूधर' इनका गरव करैं जे, धिक तिनका जनमासा[3]। रे कोई अजब तमासा।४।

[१६]

अन्तर उज्जल करना रे भाई!।टेक। कपट-कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे। अन्तर।१। जप-तप तीरथ जज्ञ व्रतादिक, आगम-अर्थ उचरना रे। विषय-कषायँ[4]-कीच नहिं धोयो, यों ही

(१) तड़के। (२) बतासा=पानीका बुद्बुदा। (३) मनुष्य-जन्म।
(४) विषय=इन्द्रिय-भोग; कषाय=क्रोध-मान-माया-लोभ।

पचि-पचि मरना रे। अन्तर ।२। बाहिर भेष-क्रिया उर-शुचिसों कीयें पार उतरना रे। नाहीं है सब लोक-रंजना, ऐसे वेदन वरना रे। अन्तर ।३। कामादिक मलसौं मन मैला, भजन किये क्या तिरना रे! 'भूधर', नील वसनपर कैसैं केसर-रंग उछरना रे! अन्तर उज्जल करना रे।४।

[१७]

अब मेरें समकित-सावन[1] आयो। टेक। बीति कुरीति मिथ्या-मति ग्रीषम, पावस सहज[2] सुहायो। अब मेरें।१। अनुभव-दामिनि[3] दमकन लागी, सुरति-घटा घन छायो। बोलै विमल विवेक-पपीहा, सुमति-सुहागिन भायो। अब मेरें।२। गुरु-धुनि

(१) समकित=सम्यक्त्व=आत्माका वह गुण या शक्ति, जिसके विकाससे तत्त्व (सत्य) की प्रतीति हो, अथवा जिससे हेय (छोड़ने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्त्वके यथार्थ विवेककी अभिरुचि हो। समकित-सावन=सम्यक्त्वका सावन अर्थात् वर्षा-उत्सव। (२) पावस=वर्षा; सहज=स्व-भाव, आत्म-भाव; सुहायो=सु-भायो, सुन्दररूपसे भाया। सहज-पावस सुहायो=आत्म-रसकी वर्षा सुहाती है या भाती है। (३) आत्मानुभवकी बिजली। (४) वीतराग वाणीकी गर्जना।

गरज सुनंत सुख उपजै, मोर-सुमन विहसायो। साधक-भाव[1] अँकूर उठे बहु, जित तित हरष सवायो। अब मेरें ।३। भूल[2] धूल कहिं मूल न सूझत, समरस[3]-जल झर लायो। 'भूधर', को निकसै अब बाहिर, निज निरचू-घर[4] पायो। अब मेरें समकित-सावन आयो ।४।

[१८]

भगवन्त-भजन क्यों भूला रे ।टेक। यह संसार रैनका सुपना, तन-धन वारि-बबूला रे। भगवन्त ।१। इस जीवनका कौन भरोसा, पावकमें तृन-तूला[5] रे। काल[6] कुदार लियें सिर ठाड़ो, क्या समझै मन फूला रे। भगवन्त ।२। स्वारथ साधै पाँच पाँव[7] तू, परमारथको लूला रे। कहु, कैसें सुख पैहै प्रानी, काम करै

(१) मोक्षमार्ग (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) साधन करनेके भाव। (२) मिथ्यात्व या असत्यकी धूल। (३) वीतराग-रस। (४) निज=अपना (आत्मिक); निरचू घर=न चूनेवाला आध्यात्मिक घर। (५) तूला=तुल्य। आगमें तिनकेके समान। (६) मौत। (७) पाँचों इन्द्रियोंसे भोग-विलास करता है।

दुख-मूला रे। भगवन्त।३। मोह[1]-पिशाच छल्यो, मत मारै निज कर कंध बसूला रे! भज श्रीराजमतीवर[2] 'भूधर', दे दुरमति सिर धूला रे। भगवन्त-भजन क्यों भूला रे।४।

[१९]

चरखा चलता नाहीं रे, चरखा हुआ पुराना।टेक। पग-खूँटे दो हालन लागे, उर-मदरा खखराना। छिदी हुई पाँखड़ी पाँसू, फिरै नहीं मनमाना। चरखा चलता नाहीं रे।१। रसना-तकलीने बल खाया, सो अब कैसें खूँटै। शबद-सूत सूधा नहिं निकसै, घड़ी-घड़ी पल टूटै। चरखा।२। आयु-मालका नहीं भरोसा, अन्त चलाचल सारे। रोज इलाज-मरम्मत चाहै, वैद-बाढ़ही हारे। चरखा चलता नाहीं।३। नया चरखला रंगा-चंगा, सबका चित्त चुरावै। पलटा वरन, गये गुन अगले, अब देखैं नहिं भावै। चरखा।४। मोटा

(१) मोह-मिथ्यात्वका भूत। (२) भगवान् नेमिनाथ।

महीं कातकर, भाई, कर अपना सुरझेरा। अन्त आगमें ईंधन होगा, 'भूधर' समझ सबेरा। चरखा चलता नाहीं।५।

[२०]

जगत-जन जूवा हारि चले। टेक। काम-कुटिल सँग बाजी माँड़ी, उन करि कपट छले। जगत।१। चार कषाय-मयी जहँ चौपरि, पाँसे जोग[1] रले। इत सरवस, उत कामिनि-कौड़ी, इह विधि झटक चले। जगत-जन।२। कूर खिलारि विचारि न कीन्हों, है हैं ख्वार भले। बिना विवेक[2] मनोरथ काके, 'भूधर', सफल फले।३।

नीच ही की ओरकों उमंग चलै 'कमला'[3] सो,
पिता 'सिन्धु' सलिल-स्वभाव याहि दियो है;
रहै न सुथिर ह्वै, सकंटक चरन याको,
बसी कंज-माँहिं, कंज-कैसो पद कियो है।
जाकों मिलै हितसों, अचेत करि डारै ताहि,
'विष' की बहन, तातैं विष-कैसो हियो है।
ऐसी ठगहारी, जिन, धरमके पन्थ डारी,
करिकैं सुकृति, तिन, याको फल लियो है।
—महाकवि बनारसीदास

(१) योग=मन-वचन-कायकी क्रिया। (२) सत्य-ज्ञान। (३) लक्ष्मी।

[२१—मल्हार-सोरठ]

देखो भाई, महा विकल संसारी। दुखित अनादि मोहके कारन राग-द्वेष भ्रम भारी; देखो भाई, महा विकल संसारी।१। हिंसाऽरम्भ करत सुख समुझैं, मृषा बोलि चतुराई। पर-धन हरत समर्थ कहावैं, परिगह बढ़त, बड़ाई! देखो भाई।२। बचन राखि काया दृढ़ राखैं, मिटै न मन चपलाई। यातैं होत औरकी औरैं, शुभ करनी दुखदाई। देखो भाई।३। योगासन करि करम निरोधैं, आतम-दृष्टि न जागै। कथनी कथत महन्त कहावै, ममता-मूल

(१) आत्म-विस्मृत, अपनेको भूला हुआ, विक्षिप्त, खब्ती, पागल; व्याकुल, विह्वल। (२) अपनेको अनादि कालीन दर्शन-मोहनीय और चारित्रमोहनीय-कर्मके लोहेसे बनी हुई सँड़ासीसे पकड़ा हुआ समझकर, जरा अपनी दुर्दशाकी अनुभूति तो कीजिये! (३) जबरदस्त मिथ्यात्व। (४) मिथ्या, झूठ। (५) वचन और कायका संयम तो कर लेते हैं, पर…। (६) देखो पृष्ठ ८६ का १२वाँ पद्य, जिसमें 'शुभ' से प्राप्त लौकिक सुखको 'पाप-बीज' बताया है। (७) मम=मेरा; ता (त्व)=पन, ममता=मेरापन। ममता-मूल=पर-द्रव्योंमें ममत्व-बुद्धि होनेकी जो 'जड़' अर्थात् 'मिथ्यात्व' उसे नहीं छोड़ते।

न त्यागै। देखो भाई।४। आगम-वेद सिधान्त-पाठ सुनि, हिये आठ मद आनै। ज़ाति-लाभ-कुल-बल-तप-विद्या-प्रभुता-रूप[1] बखानै। देखो भाई।५। 'जड़[2]' सों राचि 'परम पद[3]' साधै, 'आतम-शक्ति' न सूझै। बिना विवेक-विचार दरबके गुन-परजाय न बूझै[4]। देखो भाई, महा विकल।६। 'जस[5]'वाले जस सुनि सन्तोषैं,

(१) ये आठ मद हैं। आश्चर्य है कि आगमका ज्ञान और सिद्धान्तका पाठ सुनते रहनेपर भी मनसे जाति-कुल-बल आदिका घमड नहीं छोड़ता! (२) पर-पदार्थ। (३) मोक्ष-पद। (४) सम्यग्ज्ञान-जनित विचार-बुद्धिके बिना जीवादि तत्त्व और द्रव्योंके गुण-पर्याय समझमें नहीं आते; और इसके बिना अपनी आत्म-शक्तिको न पहचानकर 'जड़' पदार्थोंमें मगन होकर 'परम-पद' या मोक्ष-पदके लिए की जानेवाली जो साधना है, वह व्यर्थ हो जाती है। (५) 'यश' या नाम चाहनेवाले अपनी नामवरी (असलमें, उस देहकी, जो अवश्य ही एक दिन भस्म होकर धूलमें मिल जायगी!) सुनकर ही तसल्ली कर लेते हैं कि बस मनुष्य-जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया। यह नहीं सोचते कि जिस हसके निकल जानेसे कुटुम्बीजन इस देहको मिट्टीमें मिलाये बगैर दम नहीं लेंगे, उस राजहंस (आत्मा) के लिए यह 'नामवरी' किस काम आयेगी! हमारी यह अपने-आपको

'तप'वाले[1] तन सोषैं। 'गुन'वाले पर-गुनको दोषैं, 'मत'वाले मत पोषैं। देखो भाई ।७।
गुरु-उपदेश सहज-उदयागति[2] मोह-विकलता छूटै। कहत 'बनारसि' है करुना-रसि[3], अलख अखय निधि लूटै।
देखो भाई, महा विकल संसारी ।८।

[२२—राग गौरी]

भौंदू भाई, समुझ सबद यह मेरा; जो तू देखै इन आँखिनसों, तामें कछू न

ठगनेकी कला अद्भुत है। और उससे भी अद्भुत है मोहनीय-कर्मका व्यंग-पूर्ण अट्टहास्य, जो इस श्रुत-सहित 'बहिरात्मा' को ('बहरी आत्मा' कहनेमें भी कोई बुराई नहीं) सुनाई ही नहीं पड़ता। (१) बहिरात्मा तपस्वी तपसे शरीरको सुखानेके सिवा और करते ही क्या हैं! यही बात 'गुण' और 'मत'-वालोंके लिए भी कही गई है। (२) सहज=स्व-भाव या आत्म-भाव; उदय+आगति=उदय-पूर्वक आगमन। "सहज-उदयागति मोह-विकलता छूटै"=आत्म-भावके उदय-आगमन या जागरणसे (निसर्गज, नैसर्गिक या आत्म-स्वभावसे उत्पन्न सत्य-दर्शन-ज्ञानसे) मोहनीय कर्म-जन्य विकलता (विक्षिप्तता या पागलपन) दूर हो जाती है। (३) करुना=दया, अहिंसा। 'करुना-रसि'=अहिंसा-रसका रसिक।

तेरा। टेक।१। ये आँखें भ्रम ही सों उपजीं, भ्रम ही के रस पागीं। जहँ-जहँ भ्रम, तहँ-तहँ इनको श्रम, तू इन ही को रागी। भौंदू भाई।२। ये आँखें दोउ रची चामकी, चामहि चाम बिलोवै। ताकी ओट मोह-निद्रा-जुत, सुपन-रूप तू जोवै। भौंदू भाई।३। इन आँखिनको कौन भरोसौ, ये बिनसैं छिन माँहीं। है इनको पुद्गलसों परिचय, तू तो पुद्गल नाहीं। भौंदू भाई।४। पराधीन बल इन आँखिनको, बिन परकाश न सूझै। सो परकाश अगिनि-रवि-शशिको, तू अपनो-कर बूझै! भौंदू भाई।५। खुले पलक ये कछुइक दीखहिं, मुँदे पलक नहिं सोऊ। कबहूँ जाहिं, होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आँखें दोऊ। भौंदू भाई।६। जंगमें काय पाय ये प्रगटैं, नहिं

(१-२) भ्रम=भ्रान्ति, मिथ्या ज्ञान, एक द्रव्यमें अन्य द्रव्यका भान। भ्रम=भ्रमण; संसार-भ्रमण। (३) स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-युक्त जड़ पदार्थ, (Material), जड़-वस्तु; भौतिक, अनात्मीय। (४) त्रस-शरीर। कम-से-कम चार-इन्द्रिय प्राणियोंको ही आँखें प्राप्त होती हैं; क्योंकि आँख चौथी इन्द्रिय है।

थावरके[1] साथी। तू तो इन्हें मान अपने हग, भयो 'भीमको हाथी'। भौंदू भाई ।७। तेरे हग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध-रूप तू डोलै। कै तो सहज[2] खुलैं वे आँखें, कै गुरु-संगति[3] खोलै। भौंदू भाई, समुझ सबद यह मेरा; जो तू देखै इन आँखिनसों, तामें कछु न तेरा ।८।

[२३—गौरी]

भौंदू भाई, ते हिरदेकी आँखें, जे करषैं[4] अपनी सुख-सम्पति, भ्रमकी[5] सम्पति नाखैं[6]। भौंदू भाई ।१। जे आँखें अमृत[7]-रस बरखैं, परखैं केवलि-वानी। जिन्ह आँखिन विलोकि परमारथ, होंहिं कृतारथ प्रानी। भौंदू भाई ।२। जिन आँखिनहि दशा केवलिकी, करम-लेप नहिं लागै। जिन

---

(१) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (वृक्ष-लता आदि) एक-इन्द्रिय प्राणी। (२-३) सहज='निसर्गज'; गुरु-सगति='अधिगमज'। हियेकी आँखें (मनकी आँखें, आत्म-दृष्टि) दो तरहसे खुल सकती हैं—स्वाभाविक सम्यग्दर्शनसे, अथवा उपदेश या बोधि-ज्ञानसे प्राप्त सम्यग्दर्शनसे। (४) करषैं=कर्षण करती हैं, खींचती हैं। जो अपनी सुख-सम्पत्तिको अपनी ओर खींचतीं या ग्रहण करती हैं, वे ही हृदयकी आँखें हैं। (५) मिथ्यात्वकी। (६) नाखैं=निक्षेप करती हैं, फेंकती हैं। (७) अमर-आत्माका रस।

आँखिनके प्रगट होत, घट अलख निरंजन जागै। भौंदू भाई ।३। जिन आँखिनसों निरखि भेद-गुन, ज्ञानी ज्ञान विचारै। जिन आँखिनसों लखि स्व-रूप मुनि, ध्यान-धारना धारै। भौंदू ।४। जिन आँखिनके जगे, जगतके लगें काज सब झूटे। जिनसों मगन होय शिव-सनमुख, विषय-विकार अपूठे। भौंदू भाई ।५। जिन आँखिनमें प्रभा परमकी, पर-सहाय नहिं लेखै। जे समाधिसों लखैं अखंडित, घटै न पलक निमेखै। भौंदू भाई ।६। जिन आँखिनकी जोति प्रगटकें, इन आँखिनमें भासै। तब इन हूकी मिटै विषमता, समता-रस परगासै। भौंदू भाई ।७। जे आँखें पूरन स्वरूप धरि, लोकालोक लखावै। ए वे, यह वह, सब विकलप तजि, निरविकल्प-पद पावै। भौंदू भाई. ते हिरदेकी आँखें ।८।

[२५—धनश्री]

चेतन, तोहि न नैक सँभार! नख-सिखलौं दिढ़ बन्धन वेढ़े, कौन करै निरवार! चेतन।१। जैसें आग पषान-काठमें, लखिय न परत लगार। मदिरा पान करत मतवारो, ताहि न कछू विचार। चेतन, तोहि न नैक सँभार।२। ज्यों गजराज पखार आप तन, आपहि डारत छार। आपहि उगलि पाटको कीरा[1], तनहि लपेटत तार। चेतन, तोहि न नैक सँभार।३। सहजै[2] कबूतर-लोटन[3] कैसो, खुलै न, पेच अपार। अवर उपाय न बनै 'बनारसि', सुमरन[4] भजन अधार। चेतन, तोहि न नैक सँभार!

---

(१) रेशमके कीड़े अपने ही मुहसे लारका तार निकालकर, उससे, अपने ही तनके चारों तरफ घेरा (कोशा) बनाकर आप ही उसमें बन्द हो जाते हैं, और अन्तमें, लम्बा रेशमी सूत तैयार करनेवाले व्यापारियों या कारखानों द्वारा कोश-सहित खौलते पानीमें उबाल दिये जाते हैं। मोहनीय-कर्मके कारखानेकी तरफसे हम चेतन-कीड़ोंकी भी अनादिसें यही दशा होती आ रही है। हा हन्त, फिर भी—"चेतन तोहि न नैक सम्हार!" (२) आत्मा, चेतन। (३) कविने लोटन-कबूतरके भ्रमण और रेशमके कीड़ेकी कोश-रचनाके साथ ससारी जीवोंकी करनी-भरनीकी ऐसी सुन्दर तुलना की है कि हर बात घट जाती है। (४) जिनवाणीका स्मरण-मनन और जिनेन्द्रका भजन ही हमारे लिए आधार है; और "धर्मध्यान' उसका एक साधन है।